सद्गुरवे नमः

सद्गुरु कबीर की विवेकधारा से अनुप्राणित

पारख प्रकाश

वर्ष 54 | अक्टूबर-नवम्बर-दिसम्बर 2024 | अंक 2

ज्ञानी भुलै ज्ञान कथि,
निकट रहा निज रूप।
बाहिर खोजय बापुरै,
भीतर वस्तु अनूप।।

ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, एकता तथा मानव-धर्म-प्रेरक हिन्दी पत्रिका

प्रवर्तक
सद्गुरु श्री रामसूरत साहेब
श्री कबीर मन्दिर, बड़हरा
पोस्ट—मद्दोबाजार
जिला—गोंडा, उ०प्र०

आदि संपादक
सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब

संपादक
धर्मेन्द्र दास

आदि व्यवस्थापक
प्रेम प्रकाश

मुद्रक एवं प्रकाशक
गुरुभूषण दास

पारख प्रकाश इंटरनेट पर
www.kabirparakh.com

वार्षिक शुल्क : 60.00
एक प्रति : 16.00
आजीवन सदस्यता शुल्क
1600.00

विषय-सूची

कविता	लेखक	पृष्ठ
निंदक ताको जानिये	श्री गुरुदयाल साहेब जी	1
समझ बूझ सौदा तू करना	हेमन्त हरिलाल साहू	6
तृष्णा का कहीं अन्त नहीं है	रामेन्द्र दास	15
गुरु ज्ञान अनमोल	राधाकृष्ण कुशवाहा	18

स्तंभ

पारख प्रकाश / 2 व्यवहार वीथी / 16 परमार्थ पथ / 24
बीजक चिंतन / 34

लेख

जब अपवित्र विचार घेरते हैं!	पं. श्री कृष्णदत्त जी भट्ट	7
मन चंचल क्यों होता है?	विवेक दास	13
कैसे सुलझाएं तनाव की गुत्थियां	श्री ललितप्रभ सागर जी महाराज	19
मनुष्य जीवन की सफलता किसमें है?	धर्मेन्द्र दास	26
सकारात्मक सोच का महत्त्व	अज्ञात	33
आपुहि बरि आपन गर बांधा	श्री कमलापति पांडेय	37
माया मोह मोहित कीन्हा		42

पुनर्मुद्रित पुस्तकें

1. रामायण रहस्य	300.00
2. बीजक टीका	130.00
3. अमृत कहां है?	100.00
4. उपनिषद् सौरभ	90.00
5. धनी धर्म साहेब के अमृत उपदेश	60.00
6. सब सुख तेरे पास	45.00
7. ऐसी करनी कर चलो	60.00
8. सुखी जीवन की कला	100.00
9. सुखी जीवन का रहस्य	100.00

सद्गुरु कबीर सत्संग शिविर

कुम्भ मेला प्रयागराज : 2025

धर्मप्रेमी बन्धुओ,

आप सबको विदित ही है कि प्रयागराज का द्वादश वर्षीय कुम्भ मेला जनवरी–फरवरी, 2025 में होने जा रहा है। सद्गुरु कबीर के शाश्वत मानवीय मूल्यों के व्यापक प्रचार–प्रसार का लक्ष्य रखकर कबीर पारख संस्थान, प्रयागराज के तत्त्वावधान में प्रयागराज कुम्भ मेले में शिविर लगाने का निर्णय सन्तों एवं भक्तों द्वारा लिया गया है।

शिविर में आगंतुक सन्तों एवं भक्तों के लिए आवास, भोजन एवं प्राथमिक चिकित्सा आदि की व्यवस्था की जायेगी। इस आयोजन के लिए बड़ी मात्रा में अन्न एवं द्रव्य की आवश्यकता होगी, जिसके लिए आप सबका सहयोग अपेक्षित है। अतः उदारतापूर्वक सहयोग देकर आयोजन को सफल बनावें।

कुम्भ मेला हेतु सहयोग Scan Pay

कुम्भ मेले की प्रमुख तिथियां

13 जनवरी, 2025 - पौष पूर्णिमा
14 जनवरी, 2025 - मकर संक्रांति
29 जनवरी, 2025 - मौनी अमावस्या
3 फरवरी, 2025 - वसंत पंचमी
12 फरवरी, 2025 - माघ पूर्णिमा

सद्गुरु कबीर सत्संग शिविर का कैम्प कुंभ मेला क्षेत्र में **10 जनवरी, 2025 से 4 फरवरी, 2025 तक** रहेगा। आगंतुक संत–भक्त इसी के बीच आवें।

आयोजक

सद्गुरु कबीर सत्संग शिविर समिति

संत कबीर मार्ग, प्रीतमनगर, प्रयागराज

मोबाइल : 9451369965, 9451059832, 9307446163, 9506927615, 9506907598

नोट – छावनी लगने का पता तथा पहुंचने का मार्ग बाद में सूचित किया जायेगा

R.N.I.'s Regd. No. 18528/71 Postal Regd. No. A.D. 253/2000

कबीर पारख संस्थान, प्रयागराज

का

सैंतालीसवां वार्षिक अधिवेशन

दिनांक—15-16-17 अक्टूबर 2024

दिन—मंगलवार, बुधवार, गुरुवार

क्वार शुक्ल त्रयोदशी, चतुर्दशी एवं पूर्णिमा

स्थल—कबीर,आश्रम,,कबीर,नगर,,प्रयागराज

निवेदन

1. पारख प्रकाश प्रतिवर्ष जनवरी, अप्रैल, जुलाई एवं अक्टूबर में प्रकाशित होता है। यदि इन महीनों की आखिरी तारीख तक आपको अंक न मिले, तो इसकी शिकायत अवश्य भेजें, ताकि आपको दूसरी प्रति भेजी जा सके। देर से शिकायत मिलने पर दूसरी प्रति भेजने में हमें काफी असुविधा होती है।

2. आशा है यह पत्रिका आपके लिए रुचिकर, ज्ञानवर्धक एवं प्रेरणादायी सिद्ध हुई होगी तथा आगे भी आप इसके ग्राहक बने रहना पसन्द करेंगे और दूसरों को भी इसके ग्राहक बनने के लिए प्रेरित करेंगे। इसे अधिक स्थायी तथा नियमित बनाने के लिए आप स्वयं इसके आजीवन ग्राहक तो बनें ही दूसरों को भी आजीवन ग्राहक बनने के लिए प्रेरित करें।

3. यदि आपका शुल्क इस अंक के साथ समाप्त हो रहा है तो अगले अंक के लिए अपना शुल्क यथाशीघ्र भेज दें, जिससे अगला अंक आपको समय से मिल सके। पत्र तथा शुल्क भेजते समय अपना ग्राहक नं० अवश्य लिखें।

एक प्रति 16 रुपये वार्षिक 60 रुपये आजीवन 1600 रुपये

लेख, कविता, सदस्यता-शुल्क भेजने तथा सब प्रकार के पत्र व्यवहार का पता

पारख प्रकाश

संत कबीर मार्ग, प्रीतमनगर

प्रयागराज–211011 (उ. प्र.)

Vist us : www.kabirparakh.com

E-mail : kabirparakh@yahoo. com

ग्राहक नं०

कबीर पारख संस्थान के लिए गुरुभूषण दास द्वारा प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस, प्रा. लि., पन्नालाल रोड, प्रयागराज से मुद्रित

सद्गुरवे नमः

को हिन्दू को तुरुक कहावै,
एक जिमी पर रहिये
—सन्त कबीर

पारख प्रकाश

जीव बिना नहिं आतमा, जीन बिना नहिं ब्रह्म।
जीव बिना शिवो नहीं, जीव बिना सब भर्म॥ कबीर परिचय॥

वर्ष 54] प्रयागराज, क्वार, वि. सं. 2081, अक्टूबर 2024, सत्कबीराब्द 626 [अंक 2

निंदक ताको जानिये, जाको नहिं पहिचान।
है कछु और कहै कछु औरे, यह निंदक सहिदान॥

है ताको जाने नहीं, नाहीं को करे मान।
कहहिं कबीर पुकारिके, सो नास्तिक अज्ञान॥

काम बिगारै भक्ति को, ज्ञान बिगारै क्रोध।
लोभ बिगारै वैराग्य को, मोह बिगारै बोध॥

जीव जमा सत्य साँच है, कहहिं कबीर पुकार।
जीव जमा जानै बिना, महाकठिन जन्म जार॥

एक कर्म है बोवना, उपजै बीज बहूत।
एक कर्म है भुनना, उदय न अंकुर सूत॥

साधु ऐसा चाहिये, ज्यों मोती में आब।
उतरै तो फिर नहिं चढ़ै, अनादर होय रहाब॥

चितवन करन जगत की, ज्यौं लौं नहिं अति अंत।
कहहिं कबीर पुकारिके, तौंलौं होय न संत॥

('कबीर परिचय' से)

पारख प्रकाश

ज्ञातव्य, कर्तव्य एवं प्राप्तव्य

मानव विवेकशील प्राणी है। मानव-जीवन में मन का विकास हुआ है। मन का काम है चिन्तन-मनन करना। चिन्तन-मनन करने से किसी विषय-वस्तु के बारे में जानने की इच्छा होती है, जिसे जिज्ञासा कहा जाता है। नाना कला-कौशल, मत-पंथ-ग्रंथ, ज्ञान-विज्ञान का विकास इसी जिज्ञासा का ही परिणाम है। लेकिन केवल जिज्ञासा पर्याप्त नहीं है। जिज्ञासा अर्थात जानने की इच्छा। जानना तब सार्थक होता है जब वह व्यवहार या कर्म में परिणत हो। बिना जाने-समझे कर्म करने से कर्म-कार्य सही ढंग से संपादित नहीं होगा और उससे वांछित परिणाम प्राप्त नहीं होगा। कर्म की सार्थकता है वांछित परिणाम की प्राप्ति।

मानवेतर प्राणियों में मन का विकास न होने से वे किसी विषय-वस्तु पर गहराई से चिन्तन-मनन नहीं कर सकते। इसलिए उनमें कुछ जानने-समझने की जिज्ञासा नहीं होती। उनका सब कुछ नैसर्गिक प्रकृति के अनुसार होता है। मनुष्य में जानने की शक्ति भी है और जानने की इच्छा जिज्ञासा भी है। लेकिन जब कोई व्यक्ति किसी विषय-वस्तु पर गहराई से चिन्तन-मनन न कर उसे आधे-अधूरे मन से जानना-समझना चाहता है तब उसे संबंधित विषय-वस्तु का आधा-अधूरा और गलत ज्ञान प्राप्त होता है और आधा-अधूरा गलत ज्ञान से जो कर्म-कार्य किया जायेगा उसका परिणाम गलत ही आयेगा, जो किसी के लिए भी हितकर नहीं होगा। ज्ञान वही सार्थक है जिससे सही दिशा में सही कर्म-कार्य किया जा सके और सही कर्म वही है जिसका परिणाम सबके लिए हितकर-मंगलमय हो।

ज्ञान का अर्थ है जानना-समझना। जानना-समझना तब सार्थक होगा जब मन को पूर्ण संतोष का अनुभव हो और कर्म वह सार्थक है जिसके परिणाम में दुखों की पूर्ण निवृत्ति हो और आत्यंतिक सुख-शांति का अनुभव हो।

मनुष्य जीवन को सर्वोपरि जीवन कहा गया है और बड़े सौभाग्य का फल बताया गया है। ऐसे सौभाग्य से प्राप्त सर्वोपरि और उत्तम मानव जीवन में ज्ञातव्य, कर्तव्य और प्राप्तव्य क्या है—इस पर हर मनुष्य को गंभीरता से विचार करना चाहिए। कम से कम कल्याणमार्गगामी साधकों को, चाहे वे किसी मत-पंथ-मजहब-संप्रदाय-सरणी के साधक हों, इस पर शांत चित्त से विचार करना ही चाहिए, ताकि वे सही दिशा में चलते हुए और सही ढंग से साधना कर जीवनोद्देश्य कल्याण की प्राप्ति कर सकें। सारे आग्रहों से रहित होकर ज्ञातव्य, कर्तव्य और प्राप्तव्य को इस प्रकार समझा जा सकता है।

1. ज्ञातव्य—ज्ञातव्य का अर्थ है जानने योग्य, जिसे जानना चाहिए। ज्ञान का क्षेत्र इतना विशाल है और संसार में इतने विषय-वस्तु हैं कि कोई भी व्यक्ति एक जन्म तो क्या अरबों जन्म लेकर भी सब कुछ का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। परन्तु सब कुछ को जानने की आवश्यकता क्या है! भौतिक क्षेत्र में हर मनुष्य को यह जानने की आवश्यकता है कि उसकी श्रेणी-शक्ति और योग्यता अनुसार उसका अपना तथा अपने माने गये लोगों के जीवन-निर्वाह के लिए कौन-सा काम-धंधा उचित है तथा वह क्या काम कर सकता है और किस काम को कैसे करना चाहिए। व्यावहारिक क्षेत्र में हर आदमी के पास इतना ज्ञान होना ही चाहिए कि कुटुम्ब-परिवार, नाते-रिश्तेदार, पड़ोसियों तथा सहकर्मियों से किस प्रकार व्यवहार किया जाये कि आपसी संबंधों में कहीं उलझन न आने पाये। परस्पर का व्यवहार समरस तथा मधुरतापूर्ण बना रहे।

हर मनुष्य को जीवनपर्यंत बहुत कुछ जानना-सीखना-समझना होता है, परन्तु बहुत कुछ जानने-सीखने-समझने के बाद भी यदि मन का भ्रम दूर नहीं हो पाता, कुछ न कुछ भ्रम बना ही रह जाता है, जिसे जानना चाहिए उसका ज्ञान न होने के कारण मन में

बौद्धिक और आध्यात्मिक असंतोष बना ही रह जाता है तो सारा जानना-समझना निरर्थक हो जाता है। ज्ञान वह है जिससे सारा भ्रम दूर होकर भटकाव बंद हो जाये और जीवन में स्थिरता आये।

जीवन-निर्वाह और व्यवहार मजबूरी है, जीवन का उद्देश्य नहीं। जीवन का उद्देश्य है आत्मशांति, आत्म-तृप्ति, आत्मसंतुष्टि। अतः ज्ञातव्य है जड़-चेतन, आत्म-अनात्म का भेद और उनके पृथक-पृथक गुण-धर्मों का लक्षण। साथ-साथ बंधन और मोक्ष का कारण और साधन। जड़-चेतन अर्थात अनात्म-आत्म के भेद और गुण-धर्मों का स्पष्ट ज्ञान हो जाने पर न तो बौद्धिक संदेह रह जाता है और न ही आध्यात्मिक। इसी प्रकार बंधन और मोक्ष के कारणों का स्पष्ट बोध हो जाने पर साधक धीरे-धीरे बंधनदायी कर्मों को छोड़ता जाता है और मोक्षदायी साधनों को अपनाता चला जाता है।

अंततोगत्वा सारे ज्ञानों का पर्यवसान आत्मज्ञान में ही होता है। आत्मज्ञान ही सर्वोपरि ज्ञान है। बहुत कुछ को जाना गया, परन्तु बहुत कुछ को जानने वाले को न जाना गया तो बहुत कुछ को जानना किस काम का। इसी बात को समझाने के लिए छांदोग्य उपनिषद् में सनत्कुमार और नारद का लंबा उपाख्यान दिया गया है। नारद सनत्कुमार के पास जाकर कहते हैं कि भगवन्! मैंने सुना है कि आत्मज्ञानी-आत्मवेत्ता पुरुष शोक से पार हो जाते हैं—तरति शोकं आत्मवित, किन्तु मैं शोक करता हूं। आप मुझे शोक से पार होने के लिए उपदेश करें। सनत्कुमार ने कहा—नारद! पहले तुम मुझे यह बताओ कि तुम क्या जानते हो? नारद कहते हैं—भगवन्! मैं ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, आयुर्वेद, इतिहास-पुराण, सर्पविद्या, नक्षत्र विद्या, देवजनविद्या, भूत विद्या, श्राद्धकल्प, गणित, उत्पातज्ञान, निधिशास्त्र, तर्कशास्त्र आदि अनेक विद्याएं जानता हूं, किन्तु मैं शोक करता हूं। तब सनत्कुमार ने कहा—नारद! तुम तो केवल संज्ञाओं को ही जानते हो। शास्त्रों में सज्ञाएं अर्थात नाम ही तो हैं और संज्ञाओं-नामों को जानने से कोई शोक से पार नहीं हो सकता। तब नारद कहते हैं—भगवन्! क्या संज्ञा अर्थात नाम से भी बड़ा कुछ होता है तब इससे बड़ा यह, इससे बड़ा यह की लंबी सूची प्रस्तुत करते हुए अंत में सनत्कुमार कहते हैं—यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति। भूमैव सुखम्। अर्थात जो भूमा है उसमें ही सुख है। भूमा ही सारे सुखों का आधार है। भूमा को जानकर भूमा में स्थित हो जाने वाला शोक से पार हो जाता है। इसलिए भूमा को ही जानना चाहिए।

यहां जिस भूमा की बात कही गयी है वह सबके हृदय में स्थित चेतन सत्ता है, जिसे जीव, आत्मा, रूह, सोल आदि नामों से जाना-कहा जाता है। वह हर व्यक्ति का अपना आत्म अस्तित्व है। सबके भीतर हृदय-स्थित आत्म तत्त्व-जीव ही तो सारे कला-कौशल, ज्ञान-विज्ञान, ग्रंथ-पंथ का आधार (भूमा) है। यदि जीव न हो तो कला-कौशल, ज्ञान-विज्ञान का आधार कौन होगा। हर मनुष्य को यह सोचना चाहिए कि मैं जो कुछ भी कर रहा हूं अपने लिए ही तो कर रहा हूं। तो फिर मैं कौन हूं? यह जो 'मैं' है यही वास्तविक ज्ञातव्य अर्थात जानने योग्य है। इस 'मैं' का ज्ञान न होने के कारण मनुष्य ईश्वर, ब्रह्म, खुदा, गॉड, भगवान-भगवती को पाने के लिए चारों तरफ भटक रहा है। यदि 'मैं' न होता तो ईश्वर, ब्रह्म, कल्याण, मोक्ष, निर्वाण की आवश्यकता किसको होती और इनको पाने के लिए साधना कौन करता!

इसी 'मैं' तत्त्व के लिए स्वामी शंकराचार्य कहते हैं—

अस्ति कश्चित् स्वयं नित्यमहंप्रत्ययलंबनः।
अवस्थात्रयसाक्षी सन्पञ्चकोशविलक्षणः॥

(विवेक चूडामणि, 125)

अर्थात—मैं बोध का आधार कोई स्वयं नित्य सत्ता है, जो जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं का साक्षी तथा पंचकोशों से सर्वथा विलक्षण है।

यदि नाना शास्त्रों के पठन-पाठन के बाद भी मैं अर्थात आत्मतत्त्व का ज्ञान न हुआ, आदमी जीवनपर्यंत ईश्वर-ब्रह्म को अपने से अलग मानकर भटकता रहा तो उसकी दशा वैसी ही हुई जैसे करछुली की होती है।

करछुली अनेक व्यंजनों में फिरती है, परन्तु उनके स्वाद से अनभिज्ञ ही रह जाती है। कहा गया है—

अधीत्य चतुरो वेदान् सर्वशास्त्रण्यनेकशः।
ब्रह्मत्वं न जानाति दर्वी पाकरसं यथा॥

अर्थात—चारों वेदों तथा सर्व शास्त्रों को अनेक बार पढ़ने के बाद भी यदि ब्रह्म-आत्मतत्त्व को न जाना गया तो वह व्यक्ति व्यंजनों में घूमती हुई करछुली के समान ही है।

स्वामी शंकराचार्य कहते हैं—

अविज्ञाते परे तत्त्वे शास्त्राधीतस्तु निष्फला।
विज्ञातेऽपि परे तत्त्वे शास्त्राधीतस्तु निष्फला॥

अर्थात—यदि परमतत्त्व-आत्मतत्त्व को न जाना गया तो शास्त्र अध्ययन निष्फल-व्यर्थ हो गया और यदि परमतत्त्व-आत्मतत्त्व को जान लिया गया तो शास्त्र अध्ययन निष्फल-अनावश्यक है।

सार यह है कि जड़-चेतन का एवं बंध-मोक्ष का भेद ही ज्ञातव्य अर्थात जानने योग्य है। इसको जान लेने पर ही सारा जानना सार्थक होता है और सारा भटकाव दूर होकर जीवन में स्थिरता आती है। इसलिए हर व्यक्ति को स्वयं का, आत्मतत्त्व का ज्ञान अवश्य ही करना चाहिए। बाह्य जितना भी ज्ञान है उनसे केवल शरीर निर्वाह एवं सुविधा ही मिल सकते हैं, उनसे दुखों की पूर्ण निवृत्ति नहीं हो सकती। दुखों की पूर्ण निवृत्ति आत्मज्ञान से ही होगी। श्वेताश्वतर उपनिषद् के ऋषि कहते हैं—

यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः।
तदा देवमविज्ञाय दुखस्यान्तो भविष्यति॥

अर्थात—जब कोई मनुष्य आकाश को चाम के समान लपेटकर रख लेगा तब आत्मा को जाने बिना भी वह दुखों से मुक्त हो जायेगा।

भाव है जैसे कोई मनुष्य आकाश को चाम के समान लपेटकर नहीं रख सकता वैसे ही आत्मतत्त्व को जाने बिना कोई दुखों से मुक्त नहीं हो सकता।

2. कर्तव्य—कर्तव्य का अर्थ है करने योग्य, जिसे करना चाहिए। व्यावहारिक जीवन में हर मनुष्य का मुख्य कर्तव्य है अपना तथा अपना माने गये लोगों का जीवन-निर्वाह एवं सेवा। हर व्यक्ति को समाज द्वारा बहुत कुछ मिलता है। समाज के सहयोग के बिना कोई व्यक्ति, चाहे वह कितना बड़ा क्यों न हो, कुछ नहीं कर सकता। इसलिए हर व्यक्ति का यह भी कर्तव्य है कि वह ऐसा कुछ करे जिससे समाज के लोगों की भी सेवा हो। जिससे सामाजिक व्यवस्था बिगड़े ऐसा कुछ न करना भी हर व्यक्ति का कर्तव्य है।

पारमार्थिक दृष्टि से मानव जीवन का मुख्य कर्तव्य है ऐसा कुछ करना जिससे करने की इच्छा ही समाप्त हो जाये तथा दुखों की आत्यंतिक निवृत्ति होकर पूर्ण संतुष्टि का अनुभव हो। जिस करने से कर्मों का जाल टूट जाये तथा वासनाओं का पूर्णतया अंत हो जाये वही मुख्य कर्तव्य है। अपने मन-इन्द्रियों पर पूर्ण संयम कर लेना तथा जड़-चेतन की ग्रन्थि का विच्छेद कर देना मुख्य कर्तव्य है।

ऊपर कहा गया है जिस करने से करने की इच्छा समाप्त हो तथा कुछ और करना शेष न रह जाये वही मुख्य कर्तव्य है, इसका कोई यह अर्थ न लगाये कि हाथ-पैर बटोरकर निठल्ला-आलसी बनकर चुपचाप बैठ जाना मुख्य कर्तव्य है। ऐसा करना आत्मघात करने के समान है।

शरीर रहते तक अपने-अपने क्षेत्र में हर मनुष्य को कर्मशील रहना होगा। कर्मों का सर्वथा त्याग नहीं किया जा सकता। कुछ न कुछ तो करना ही होगा। न ज्यादा तो शरीर-निर्वाहिक क्रिया-कलाप तो करना ही होगा। राग, कामना, आसक्ति का तो त्याग किया सकता है, किन्तु क्रिया-कर्म मात्र का त्याग नहीं किया जा सकता। सद्गुरु कबीर ने कहा है—कर्म करे औ रहे अकर्मी। अर्थात कर्म करते हुए अकर्मी रहना चाहिए। प्रश्न हो सकता है कि कोई कर्म करते हुए अकर्मी कैसे रह सकता है। जैसे शरीर में रोग लगने पर रोग निवारण के लिए दवा खायी जाती है। दवा सस्ती-मंहगी, कड़वी-

मीठी अनेक प्रकार की होती है। दवा चाहे जैसी हो दवा खाते हुए भी दवा के प्रति न राग होता है न द्वेष और न किसी प्रकार की कामना-आसक्ति। वैसे ही जब कोई भी कर्म राग-द्वेष, आसक्ति-कामना से रहित होकर मात्र शरीर निर्वाह एवं लोककल्याणार्थ किया जाता है तब मनुष्य कर्म करते हुए भी अकर्मी रहता है।

आत्मज्ञानी पुरुष खाते हैं, खाने की आसक्ति त्यागकर, देखते हैं, देखने की आसक्ति त्यागकर, कर्म करते हैं, कर्मफल की आकांक्षा से रहित होकर तथा आसक्ति त्यागकर। वे जो कुछ भी करते हैं आसक्ति त्यागकर करते हैं। इसलिए वे कहीं बंधते नहीं हैं, क्योंकि उनके मन में न किसी के लिए लोभ-मोह रह गया है, न राग-द्वेष और न कामना-आसक्ति।

जिस व्यवहार, आचरण, रहनी से लोभ-मोह, राग-द्वेष, कामना-आसक्ति, इच्छा-वासना मात्र का त्याग होकर निज स्वरूप में, अपने आप में स्थिति हो वही मुख्य कर्तव्य है। वासना-ग्रन्थि का छुटकर अपने आप में स्थिति हो जाने पर और कुछ करना बाकी नहीं रह जाता है। यद्यपि प्रारब्ध-शरीर निर्वाह तथा लोकमंगल के लिए कुछ करना होता है, परन्तु कोई कामना-आसक्ति न रहने पर वह करना नहीं करने के समान ही रहता है। यही तो 'कर्म करे औ रहे अकर्मी' की दशा है।

अनादि काल के संसार में ऐसा कोई कर्म बाकी नहीं रहा है जिसे न किया गया हो, और जिसे न देखा-सुना-भोगा गया हो, परन्तु आज भी करने-पाने-भोगने की तृष्णा का अंत नहीं हुआ है। आज भी मन में कुछ करने-पाने-भोगने की ललक बनी हुई है, फिर वह करना-पाना सार्थक कहां हुआ। अतः कर्तव्य वही है जिससे करने-पाने-भोगने की तृष्णा समाप्त हो जाये। तृष्णा का अंत होने पर पूर्ण संतुष्टि-तृप्ति का अनुभव हो सकेगा।

3. प्राप्तव्य—प्राप्तव्य का अर्थ है पाने योग्य, जिसे पाना चाहिए। पिछले जन्मों में क्या पाया क्या छूटा उससे आज कोई प्रयोजन ही नहीं रह गया है। वर्तमान जीवन को देखें तो पता चलता है कि बहुत कुछ मिला और बहुत कुछ पाया, परन्तु उनमें से अधिकतम छूट गये हैं। आज जो शेष और साथ में या पास में हैं वे भी कुछ दिनों में छूट जायेंगे। सदा पास में कुछ रहने वाला नहीं है। जो मिले और छूटे, साथ में न रहे वह जीव का प्राप्तव्य नहीं हो सकता। प्राप्तव्य तो वही होगा या है जो न मिले और न छूटे, किन्तु सदैव साथ में रहे।

बाहर से जो कुछ भी प्राप्त होगा वह सदैव साथ में नहीं रहेगा। यद्यपि बाहर से प्राप्त प्राणी-पदार्थों के सहयोग-संबंध से जीवन का व्यवहार एवं निर्वाह होता है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता, परन्तु यह भी ज्वलंत सत्य है कि न कोई प्राणी-पदार्थ सदैव साथ में रह पाते हैं और न उनसे पूर्ण शांति-संतुष्टि मिल पाती है। अतः कोई प्राणी-पदार्थ प्राप्तव्य नहीं हो सकता।

यदि कोई यह सोचता है कि प्राणी-पदार्थ तो प्राप्तव्य नहीं हो सकते, प्राप्तव्य तो ईश्वर-ब्रह्म-परमात्मा है, तो वह भी गहरी भूल में है। बाहर ऐसा कोई ईश्वर-ब्रह्म-परमात्मा नहीं है जो मिलता हो। यह सब तो मनुष्य की ही कल्पना है। यदि बाहर कोई ईश्वर-ब्रह्म-परमात्मा है और मिलता है तो वह मिलकर छूट जायेगा, क्योंकि मिली हुई चीज छूटेगी अवश्य चाहे उसका नाम कुछ भी क्यों न हो। जो मिले और छूटे वही तो माया है और माया प्राप्तव्य हो नहीं सकती। कहा भी गया है—

गो गोचर जहँ लग मन जाई। सो सब माया जानहु भाई॥
देखिय सुनिय गुनिय मन माहीं। मोह मूल परमारथ नाहीं॥

(रामचरित मानस)

केन उपनिषद् के ऋषि ने कहा है—जो आंखों से नहीं देखा जा सकता, कानों से नहीं सुना जा सकता, वाणी से नहीं कहा जा सकता और मन से जिसका मनन नहीं किया जा सकता, किन्तु जिसकी सत्ता से आंखें देखती हैं, कान सुनते हैं, वाणी बोलती है और मन मनन करता है वही ब्रह्म है। आंखों से देखकर, कानों से सुनकर, वाणी से बोलकर तथा मन से मनन कर जिसकी उपासना करता है वह ब्रह्म नहीं है।

बाहर से कुछ भी पाने का साधन पांच ज्ञानेन्द्रियां तथा मन हैं और इनसे जो कुछ भी पाया जायेगा वह

माया होगी और माया प्राप्तव्य हो नहीं सकती। जिसकी सत्ता से आंखें देखती हैं, कान सुनते हैं, वाणी बोलती है तथा मन मनन करता है वह तो हर व्यक्ति का अपना आपा है, आत्म अस्तित्व, स्वसत्ता है और उसे पाना नहीं है, वह नित्य प्राप्त है।

श्री रामरहस साहेब ने पंचग्रंथी में कहा है—

प्राप्त जीव इच्छा नहीं, केवल हंत छुड़ाव।
निज स्वरूप लखि दयायुत, दीन जानि अपनाव॥

अर्थात—जीव को कुछ पाने की इच्छा नहीं करना है किन्तु केवल अहंकार का त्याग करना है। अन्य जो मनुष्य एवं मानवेतर प्राणी हैं उन्हें अपना सजातीय बन्धु समझकर उनके साथ दया-करुणा का व्यवहार करना है।

इच्छा और अंहकार का त्याग कर देने पर जो शेष रह जायेगा वही प्राप्तव्य है और वह हर व्यक्ति का अपना आपा है, जो नित्य पाप्त ही है। यदि यह कहा जाये कि मोक्ष, कल्याण, निर्वाण प्राप्तव्य हैं क्योंकि मोक्ष, कल्याण, निर्वाण पाने के लिए ही लोग भक्ति-भजन, ध्यान-साधना, त्याग-वैराग्य आदि करते हैं, तो यह भी सच नहीं है। क्योंकि मोक्ष, कल्याण, निर्वाण ऐसा कुछ नहीं है जो बाहर से प्राप्त होते हों। कर्म-वासना जनित जितने भी बंधन हैं, सारे बंधनों के छूट जाने या मिट जाने के पश्चात जो दशा-स्थिति होती है उस दशा-स्थिति को ही मोक्ष, कल्याण, निर्वाण कहा जाता है। जीव की निर्बन्ध स्थिति ही मोक्ष, कल्याण, निर्वाण है और वह हर जीव का अपना स्वरूप है। उसे पाना नहीं है। केवल बंधन छुड़ाने का काम करना है। बंधन मिटा, मोक्ष-कल्याण ही शेष रह गया।

सबका सार है जड़-चेतन अर्थात अनात्म-आत्म का भेद, स्वस्वरूप ही ज्ञातव्य है, वासना-ग्रंथि बंधन मात्र का त्याग कर्तव्य है और स्वरूपस्थिति, मोक्ष-शांति प्राप्तव्य है, जो नित्य प्राप्त है। स्वरूपज्ञानपूर्वक दृढ़ वैराग्य-साधना द्वारा सारी वासनाओं का ध्वंस कर देना है।

—धर्मेन्द्र दास

समझ बूझ सौदा तू करना

रचयिता—हेमन्त हरिलाल साहू

जग में जीवन के दिन चार,
दुनिया है हाट बाजार।
समझ बूझ सौदा तू करना,
समझ बूझ सौदा तू करना॥

ये जिन्दगी बड़ा अलबेला,
है चला चली का खेला।
श्वासा के रहत झमेला,
आखिर उड़ना तुझे अकेला।
इक दिन होगा तू, निराधार॥ 1 ॥

यहां चंद दिनों का डेरा,
यह जग है रैन बसेरा।
यह जीवन माया का घेरा,
न कुछ तेरा न कुछ मेरा।
यहां अरुझो नहीं कहीं मेरो यार॥ 2 ॥

है दुनिया वाले मनगरजी,
नहीं सुनेगा तेरी अरजी।
जब निर्बल हो जाये काया,
अपने भी होंगे पराया।
कुल कुटुम्बी रिश्तेदार॥ 3 ॥

मंदिर मस्जिद खूब संवारा,
अपने भीतर कभी न निहारा।
कीन्हे पूजा पाठ नमाज,
नहीं कीन्हे मानुष काज।
कैसे मिले तुझे दीदार॥ 4 ॥

यहां लगी विषयों की हटरी,
मत बांधो माया गठरी।
गहो शील विवेक विचार,
अहंता ममता करु निरुवार।
'हेमंत' हो जा तू भवपार॥ 5 ॥

जब अपवित्र विचार घेरते हैं!

(काम, कारण और निवारण)

लेखक—पं. श्री कृष्णदत्त जी भट्ट

'विषयमात्र का निरोध ही ब्रह्मचर्य है। जो अन्य इन्द्रियों को जहां-तहां भटकने देकर केवल एक ही इन्द्रिय को रोकने का प्रयत्न करता है, वह निष्फल प्रयत्न करता है।'

'कान से विकार की बातें सुनना, आंख से विकार उत्पन्न करने वाली वस्तु देखना, जीभ से विकारोत्तेजक वस्तु चखना, हाथों से विकारों को भड़काने वाली चीज को छूना और साथ ही जननेन्द्रिय को रोकने का प्रयत्न करना, यह तो आग में हाथ डालकर जलने से बचने का प्रयत्न करने के समान हुआ। इसलिए जो जननेन्द्रिय को रोकने का निश्चय करे, उसे पहले से ही प्रत्येक इन्द्रिय को उस-उस इन्द्रिय के विकारों से रोकने का निश्चय कर ही लेना चाहिए।'—गांधी

× × ×

सच पूछिये तो हम आग में हाथ डालकर भी यही सोचते हैं कि हम जलेंगे नहीं।

केवल जननेन्द्रिय को रोकने की बात कहकर हम ब्रह्मचारी बनना चाहते हैं। अन्य इन्द्रियों को मनमानी करने की छूट देकर भी हम चाहते हैं कि ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कर लेंगे!

परंतु ऐसा भी कहीं सम्भव है?

'हंसब ठठाइ फुलाउब गालू?'

× × ×

अपवित्र विचारों से मुक्त होना है, ब्रह्मचर्य का पालन करना है, पवित्र जीवन बिताना है तो हमें केवल एक इन्द्रिय पर नहीं, सभी इन्द्रियों पर पहरा बैठाना होगा। किसी भी इन्द्रिय को छूट दी कि सारा किया-धरा मिट्टी हुआ!

× × ×

इन्द्रियां दस हैं। पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां।

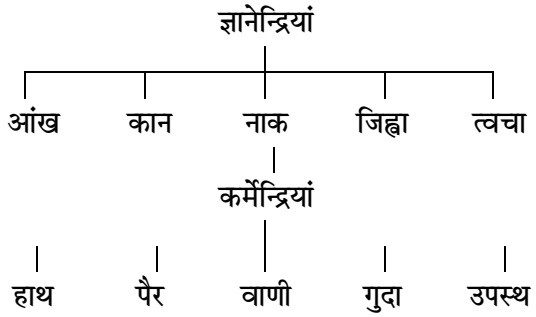

खुराफात की जड़ हैं ज्ञानेन्द्रियां, कर्मेन्द्रियां तो उनकी अनुगामिनी ठहरीं। ज्ञानेन्द्रियां काबू में रहें तो कर्मेन्द्रियों को रोकने में अधिक कठिनता न होगी।

आंख से हम देखते हैं। उसका विषय है—रूप।

कान से हम सुनते हैं। उसका विषय है—शब्द।

नाक से हम सूंघते हैं। उसका विषय है—गन्ध।

जिह्वा से हम चखते हैं। उसका विषय है—रस।

त्वचा से हम छूते हैं। उसका विषय है—स्पर्श।

इन विषयों को रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श को हम रोक लें, इनके पीछे हम दीवाने न बनें, तो काम बनते देर न लगे। अपवित्र विचार इसीलिए घेरते हैं, टिकते हैं और हमपर हावी होते हैं कि हमने अपने को इन विषयों का गुलाम बना रखा है।

× × ×

लोग कहते हैं—'आंख है तो जहान है।'

आंख शरीर की नियामत है।

मेरी बूढ़ी मां आंखों से लाचार है। नाती-पोतों का मुंह देखने के लिए अब वह तरसा करती है। बच्चों को टटोलकर वह अपनी इस इच्छा की आंशिक पूर्ति करती है। पर उतने से कहीं जी भर पाता है उसका?

कुछ ही दिन पहले तो अमरीका के एक अन्धे की घोषणा पढ़ी थी अखबारों में। एक आंख के बदले में वह कई हजार डालर देने को तैयार था!

जी, तो यह आंख इतनी कीमती है।

हजारों ही नहीं, लाखों रुपये इसपर हंसी-खुशी से न्यौछावर किये जा सकते हैं।

× × ×

और कितना अधिक दुरुपयोग करते हैं हम इसका! घीसा का एक प्रश्न है—

आंखें जती सती लखने को,
संतों के दरसन करने को,
आप लगे अबला तकने को,
खो बैठे ईमान को!
ऐसा क्यों अधरम कीन्हा?

आंखें हैं इसलिए कि हम इनसे दर्शन करें प्रभु की अपार सौन्दर्यमयी छबि का।

इनसे हम भगवान् की अद्‌भुत सृष्टि देखें। जीवन के आवश्यक कार्य तो करें ही, उनके साथ-साथ योगी-यतियों, सन्तों-महात्माओं के दर्शन करें और इस प्रकार अपने को धन्य बनायें।

परंतु इन आंखों से हम देखते क्या हैं? करते क्या हैं?

× × ×

आंखों से हम देखते हैं युवक-युवतियों का, स्त्री-पुरुषों का कल्पित सौन्दर्य।

आंखों से हम देखते हैं नारी के भिन्न-भिन्न अंग-उपांग और उनमें आसक्ति बढ़ने पर शिकायत करते हैं—

'आंखों का था कसूर छुरी दिल पै चल गयी।'

आंखों से हम देखते हैं गन्दे चित्र, गन्दे सिनेमा, नाटक, नौटंकी, प्रहसन।

आंखों से हम देखते हैं गन्दे दृश्य, गन्दी तस्वीरें, गन्दी क्रीड़ाएं, गन्दी पुस्तकें, गन्दी पत्र-पत्रिकाएं, गन्दा साहित्य, गन्दे प्रदर्शन।

आंखों से हम देखते हैं ऐसी कलाकृतियां, जो हमारे हृदय में अपवित्र विचारों को भड़काती हैं।

और तब हम अपनी सफाई देते हुए कह उठते हैं—

'जेरे दीवार खड़े हम तेरा क्या लेते हैं,
देख लेते हैं तपिश दिल की बुझा लेते हैं।'

देखने की यह सामान्य-सी क्रिया ही सारे अनर्थों का सूत्रपात करती है।

पतंगा दीपक को केवल देखता ही तो है!

और देखते-देखते ही वह उसमें जाकर भस्म हो जाता है। अजामिल ने एक बार देखा ही तो था, सारा जीवन पापमय बन गया!

तभी न तुलसीबाबा ने चेतावनी दी है हमें—

दीप सिखा सम जुबति तन मन जनि होसि पतंग।
भजहि राम तजि काम मद करहि सदा सतसंग॥

× × ×

आंखों की इस सामान्य क्रिया ने न जाने कितने स्त्री-पुरुषों को पतन के गड्ढे में गिरा दिया है!

बड़े-बड़े विद्वान् और पण्डित, सदाचारी और आदर्शवादी योगी और संन्यासी इसके फेर में ऐसे डूबे कि कहीं पता भी न चल सका!

× × ×

तो आंखों की वासना से मुक्त होने के लिए क्या हमें बिल्वमंगल की तरह आंखें फोड़ लेनी चाहिए?

'न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी!'

सुनने में तरकीब अच्छी तो मालूम होती है, पर क्या सोलह आने कारगर होगी वह?

जिनको आंखें नहीं होतीं, जिनकी आंखों की रोशनी जाती रहती है, वे विकारों से सर्वथा मुक्त हो जाते हैं क्या? जी नहीं, अन्धे भी विकारी पाये जाते हैं!

× × ×

असलियत तो यह है कि आंखें फोड़कर भी विकारी रहा जा सकता है।

और आंखें रखकर भी विकारमुक्त हुआ जा सकता है। विष को अमृत बना देनेवाले सूरदास की बात

छोड़िये, मिल्टन की बात जाने दीजिये, अन्ध गायक के.सी. दे (केष्टो बाबू)—को भूल जाइये—सभी अन्धे कहां हो पाते हैं ऐसे, जिनके चर्मचक्षु मुंदकर ज्ञानचक्षु खुल जायें। अधिकतर तो अन्धे ऐसे ही होते हैं, जिनका जीवन उनके लिए तो अभिशाप रहता ही है, समाज और देश के लिए भी अभिशाप सिद्ध होता है।

× × ×

तब प्रभु द्वारा मिले इस वरदान से वंचित हो जाना, इस नियामत से हाथ धो बैठना कहां की अक्लमन्दी है?

जिस आंख से हम अपनी ही सेवा नहीं करते, घर, परिवार, समाज, देश, राष्ट्र और सारे संसार की अपार सेवा करने में भी समर्थ हो सकते हैं, उसे फोड़ बैठना कहां की बुद्धिमानी है?

× × ×

प्रश्न उठता है कि आंखें शरारत किये बिना मानती नहीं, इधर-उधर भटके बिना मानती नहीं और उन्हें फोड़ देना भी ठीक नहीं, तब किया क्या जाय?

उपाय उसके लिए भी है, पर कोई करे तब तो?

× × ×

आंखों को फोड़ने की जरूरत नहीं। वे रहें, स्वस्थ रहें, सबल रहें, सौ साल की उम्र में भी वे बिना दिक्कत के सूई में तागा डालती रहें, परंतु उनमें विकार नहीं रहना चाहिए।

आंखें रहें, जगत के प्राणी-पदार्थों को देखें, अपना काम ठीक से करें, परंतु रूप की प्यास उनमें नहीं रहनी चाहिए।

आंखों को रहना चाहिए, परंतु उनका दृष्टिकोण बदल जाना चाहिए। उनमें से विकार निकल जाना चाहिए। उन पर ऐसा नियन्त्रण होना चाहिए कि वे पवित्र ही देखें, अपवित्र नहीं। अच्छाई ही देखें, बुराई नहीं।

× × ×

परंतु आंखों को पवित्र बनाना कोई सरल बात है? मुश्किल जरूर है, पर करने वाले के लिए नहीं।

आंखों को काबू में करने का एक सीधा उपाय है—चलते समय दृष्टि नीची करके चलना। अपने आगे चार हाथ से अधिक न देखे। आगे-पीछे, अगल-बगल, इधर-उधर, ऊपर-नीचे, टेढ़ी-तिरछी और चुभती नजर से किसी को न देखे। बन्दरों जैसी चंचल दृष्टि न रखे। दृष्टि को पक्की करने का, एकाग्र करने का अभ्यास करें।

× × ×

सवाल है कि आंखें भटकती क्यों हैं?

केवल इसलिए कि उनमें रूप की प्यास छिपी बैठी है।

रंगों के उभार में, आकृतियों के टेढ़े-तिरछेपन में, शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों में हम रूप और सौन्दर्य की कल्पना कर लेते हैं। उनमें हमारी रमणीय बुद्धि हो जाती है। आंखों के रास्ते हम उस रूप का स्पर्श करना चाहते हैं। आंखों-ही-आंखों में हम उसे पी लेना चाहते हैं, समेट लेना चाहते हैं।

परंतु असलियत क्या है?

जिस शरीर को हम रूपवान, सौन्दर्यवान, लावण्यवान समझते हैं, जिन अंगों में हम लालित्य की, लावण्य की, रमणीयता की कल्पना करते हैं, उनके आवरण को हटाकर हमने कभी देखा है? चमड़े के पर्दे को उघारकर हमने कभी भीतर झांकने की चेष्टा की है?

× × ×

कहते हैं कि एक विधवा युवती पर एक जमींदार बुरी तरह आसक्त हो गया। निराश्रिता अबला ने बचाव की कोई सूरत न देख उस कामासक्त को चार दिन बाद बुलाया।

और चार दिन बाद, मनमोदक खाते, हंसते, मुसकराते हुए वह जमींदार उक्त विधवा के घर पहुंचा तो वहां चारपाई पर पड़े एक नारी-कंकाल को देखकर उससे पूछने लगा—कहां है वह युवती?

नारी कंकाल ने धीमे स्वर में कहा—मैं ही तो हूं वह युवती।

'हैं, तुम्हीं हो वह युवती?'—चौंककर पूछा उसने। 'कहां गया तुम्हारा वह रूप? आज तो तुम्हारे निकट खड़े होने में भी मुझे घृणा हो रही है।'

आंगन में रखी एक नांद की ओर इशारा करते हुए युवती बोली—'वहां रखा है मेरा वह रूप। जाकर देख लो न!'

जमींदार नांद की ओर बढ़ा। देखा, उसमें मल भरा पड़ा है। दुर्गन्ध से उसकी नाक फटने लगी। उलटे पैरों भागा वह वहां से।

युवती ने जमाल गोटा खाकर उस कामान्ध जमींदार को दिखा दिया कि जिसे वह रूप-लावण्य समझे बैठा था, वह सारा भवन मल पर ही प्रतिष्ठित था!

× × ×

स्त्री हो या पुरुष, युवक हो या युवती, जिस किसी के भी शरीर को हम सुन्दर मानकर शलभ की भांति आतुर होकर दौड़ते हैं, उसके भीतर आखिर भरा हुआ क्या है!

मल, मूत्र, कफ, थूक, खखार, रक्त, मांस, मज्जा आदि ही तो!

पृथक-पृथक देखने से इनमें कौन-सी वस्तु रमणीय जान पड़ती है?

× × ×

भगेन चर्मकुण्डेन दुर्गन्धेन व्रणेन च।
खण्डितं हि जगत् सर्वं सदेवासुरमानुषम्॥

फिर भी दुर्गन्धपूर्ण व्रण की भांति सदा बहने वाले इस चर्मकुण्ड में न जाने कितने व्यक्ति डूब गये। कहा गया है—

'स्तनौ मांसग्रन्थी'
'मुखं श्लेष्मागारम्।'
'स्रवन्मूत्रक्लिन्नं जघनम्।'

इनमें से कौन-सी वस्तु आकर्षण की?

परंतु हम हैं कि गड्ढे में गिरने में ही सुख और आनन्द की अनुभूति करते हैं!

ठीक ही तो कहा है सन्तों ने—

गन्दगी को कीड़ो मूक मानत अनन्दगी।
माया को मजूर कूर कहा जाने बन्दगी॥

× × ×

घटना है गया की एक नुमाइश की।

र...घूम रहे थे पत्नी के साथ।

कालेज के तीन मनचले लग गये पीछे।

र...की पत्नी र...से बोली—आप पांच मिनट के लिए मेरे पास से हट तो जाइये।

उनके हट जाने पर उसने उन लड़कों को अपने पास बुलाया।

दूर खड़े पति की ओर इशारा करते हुए वह बोली उनसे—'जरा बताइये तो उनमें कौन-सी कमी है आप लोगों से? रंग में, रूप में, स्वास्थ्य में, विद्या में, बुद्धि में आप उनसे कितना आगे हैं? फिर आप लोग क्यों आशा बांधे मेरे पीछे फिर रहे हैं कि मैं आप में से किसी की ओर आकृष्ट होऊंगी?'

'और फिर, क्या रखा है इस शरीर में, जिसे आप इतनी देर से घूर-घूरकर देख रहे हैं? देखिये, ये हैं मेरे हाथ-पैर। खूब देख लीजिये एक बार जी भरकर।'

मनचले लड़कों पर तो घड़ों पानी पड़ गया!

नुमाइश से ऐसा मुंह छिपाकर भागे कि उलटकर ताकने की हिम्मत ही न पड़ी।

× × ×

हम आंख खोलकर देखें तो जिस शरीर को हम सुन्दर और आकर्षक समझते हैं, उसमें हमें भीतर गन्दगी-ही-गन्दगी दीख पड़ेगी।

'बिष रस भरा कनक घट जैसे।'

× × ×

सेंट से सुवासित, रेशमी परिधान से आवेष्टित, शृंगार-सज्जा से सज्जित चाहे जैसी रूपसी ऊपर से कितनी ही आकर्षक क्यों न लगे, परंतु मानस चक्षुओं से उसका 'पोस्टमार्टम' करके देखिये—भीतर आपको मल-मूत्र की गन्दी नालियां ही बहती मिलेंगी।

× × ×

तभी न शंकराचार्य ने कहा है—

नारीस्तनभरनाभिनिवेशं मिथ्यामायामोहावेशम्।
एतन्मांसवसादिविकारं मनसि विचारय बारम्बारम्॥

पर, हम इस तथ्य पर बार-बार विचार करें तब तो!

× × ×

नारी को देखने का एक पहलू और है।

वह जन्मदात्री है।

वह मां है।

नारी का यह मातृरूप परम पावन है, परम पवित्र है।

सारी पशुता इसके समक्ष नतमस्तक हो जाती है।

अपवित्र विचार आनन-फानन भस्म हो जाते हैं।

× × ×

रामकृष्ण परमहंस को 'सही' रास्ते पर लाने के लिए उनके कुछ 'शुभचिन्तक' उन्हें ले गये वेश्याओं के कोठे पर!

और वे उन्हें देखते ही 'मां!' 'मां!' कहकर समाधिस्थ हो गये!

× × ×

नारी को मां मानते ही कुविचारों की कन्नी कट जाती है। हमारी परम्परा ही है—'मातृवत् परदारेषु' मानने की।

आंखों को इसका अभ्यास करा देने से ही काम बन सकता है।

× × ×

सीय राममय सब जग जानी। करउं प्रनाम जोरि जुग पानी॥

—तुलसी का यह भाव हमारे हृदय में उतर आये फिर तो कहना ही क्या?

जगज्जननी जगदम्बा ही तो सर्वत्र व्याप्त हैं।

कोई भी नारी-मूर्ति-छोटी हो या बड़ी, सुन्दर हो या असुन्दर, काली हो या गोरी, मोटी हो या पतली-जैसे ही हमारे नेत्रों के समक्ष पड़े, हम सोचने लगें कि यह तो जगदम्बा है, मां है।

× × ×

आंखों को भटकने का और बदतमीजी दिखाने का मौका तभी मिलता है, जब हम आंखों को इसकी छूट दे देते हैं और हम स्त्रियों से मां-बहिन के पवित्र रिश्ते को छोड़कर दूसरे-दूसरे रिश्ते लगाने लगते हैं।

आंखों को हम कसे रहें, काबू में रखें, पल भर के लिए भी इधर-उधर भटकने की छूट न दें, तो अपवित्र विचार पनपने का मौका न पा सकेंगे और अपनी मौत आप मर जायंगे।

× × ×

मतलब, हमें आंखों को दुष्ट बालक की तरह बाकायदा ट्रेनिंग देनी होगी, जिससे वे इधर-उधर न भटकें। उन्हें संयमित करना होगा। साम, दाम, दण्ड, भेद—सभी उपायों का आश्रय लेना होगा। उन्हें समझाना होगा। फुसलाना होगा। बदतमीजी करने पर जोर से डांटना-डपटना भी होगा और ऐसा क्रोध करना होगा कि आइंदा से ऐसी शरारत की तो फोड़कर ही धर दूंगा!

जैसे भी हो आंखों को राह-रास्ते पर लाना होगा।

× × ×

शंकराचार्य ने ठीक कहा है—

दोषेण तीव्रो विषयः कृष्णसर्पविषादपि।

विषं निहन्ति भोक्तारं द्रष्टारं चक्षुषाप्ययम्॥

'दोष के मामले में विषय काले सांप को भी मात करते हैं। विष तो खाने वाले को मारता है, विषय तो आंख से देखने वाले को भी नहीं छोड़ते!'

इसलिए विषयों से आंख मूंद लेने की पूरी जरूरत है।

× × ×

आधुनिक मनोविज्ञान कहता है कि कामवासना जब जबरन दबा दी जाती है, तब वह असंख्य मानवीय दुर्बलताओं के रूप में प्रकट होती है।

इस मर्ज की दवा है उदात्तीकरण—sublimation. वासना की धारा को अच्छी दिशा में मोड़िये।

उच्च कलाओं, ललित कलाओं की उपासना में उसे लगा दीजिये।

मनन-चिन्तन, भजन-पूजन, अध्ययन, देशाटन, प्राकृतिक दृश्यों के निरीक्षण, बागवानी आदि में उसे लगा दीजिये।

समाज-सेवा, दीन-सेवा, गो-सेवा-जैसे ठोस रचनात्मक कामों में उसे लगा दीजिये।

तात्पर्य यह कि वासना का परिष्कार कीजिये। प्राकृतिक सौन्दर्य देखिये, अन्तःसौन्दर्य देखिये, ईश्वरीय सौन्दर्य देखिये।

× × ×

जिस सौन्दर्य का निरीक्षण हमारे हृदय में उदात्त भावनाएं भरता है, पवित्र विचार जाग्रत करता है, हमें निर्विकार बनाता है, वह निरीक्षण ग्राह्य है, वांछनीय है, सार्थक है।

जिस सौन्दर्य का निरीक्षण हमारे हृदय में कलुषित भावनाएं भरता है, अपवित्र विचारों को भड़काता है, विकारों को उत्तेजित करता है, वह निरीक्षण घातक है, अग्राह्य है, अवांछनीय है।

यही हमारे देखने की कसौटी होनी चाहिए।

× × ×

अभ्यास की बात है, फिर तो ज्ञानदेव की भांति कोई भी व्यक्ति दावा कर सकेगा कि 'मेरी इन्द्रियों का स्वभाव ही ऐसा हो गया है कि जो न देखना चाहिए, उसकी तरफ आंख ही नहीं जाती, जो सुनने योग्य नहीं है, उसे कान सुनते ही नहीं!'

× × ×

प्रकृति के कण-कण में, नदी और पर्वत में, सागर और सरोवर में, पृथ्वी और आकाश में, वृक्षों और लताओं में, उषा और संध्या में, पुष्पों और पौधों में सर्वत्र ही सौन्दर्य भरा पड़ा है। हम आंख उठाकर देखें भी तो!

जिस सिम्त नजर कर देखे हैं,
उस दिलवर की फुलवारी है!
कहीं सब्जी की हरियाली है,
कहीं फूलों की गुल क्यारी है!!

× × ×

हमारी दृष्टि मंगलमयी हो। सर्वत्र हम शुभ के ही, पवित्र के ही, मंगल के ही दर्शन करें। सत्यं शिवं सुन्दरम् की ही झांकी करें।

फिर तो—

जिधर देखता हूं उधर तू ही तू है।
कि हर शय में जलवा तेरा हू बहू है॥

और—

निगह अपनी हक़ीकत आशना मालूम होती है।
नजर जिस शय पर पड़ती है, खुदा मालूम होती है॥

× × ×

तब कहां ठहरेगा पाप? कहां ठहरेगी वासना? कहां ठहरेंगे अपवित्र विचार।

कहते हैं कि एक व्यक्ति किसी भक्त-स्त्री पर आसक्त हो गया।

भक्त-स्त्री ने उसे दूसरे दिन जिस समय बुलाया, उस समय वह साधुओं की मण्डली में बैठी थी।

उसे आया देख वह बोली—तुम अपनी कामना पूरी करो न!

झिझकता हुआ बोला वह—उसके लिए तो एकान्त चाहिए न!

भक्त-स्त्री बोली—मेरे भगवान् तो सर्वत्र हैं। एकान्त मिलेगा कहां?

लजाकर वह कामान्ध व्यक्ति गिर पड़ा उस देवी के चरणों पर।

प्रभु को सर्वव्यापी मानते ही पाप-ताप टिक ही कहां सकते हैं!

× × ×

काश, स्वामी रामतीर्थ की भांति हम सोच पाते—'ये तारे-सितारे, ये चन्द्र-सूर्य, ये झलकती हुई नदियां, यह सांसारिक रूप-सौन्दर्य—उस सचाई के गिरे-पड़े मोती हैं। जिसके गिरे-पड़े मोतियों का यह हाल है, उसका अपना क्या हाल होगा!'.....

लगाकर पेड़ फूलों के, किये तकसीम गुलशन में।
जमाया चांद सूरज को, सजाये क्या सितारे हैं॥

(कल्याण, जून 2022 अंक से साभार)

मन चंचल क्यों होता है?

लेखक—विवेक दास

प्रायः लोगों की शिकायत होती है कि मन बड़ा चंचल है। सामान्य तो सामान्य बड़े-बड़े ज्ञानी-गुणी और विद्वान लोग भी कहते हैं कि मन बड़ा चंचल है और इसे वश में करना बड़ा कठिन है। गीता में महारथी अर्जुन कहते हैं—

चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥

हे कृष्ण! मन बड़ा ही चंचल है। यह प्रमथन स्वभाव वाला महान शक्तिशाली और हठी है। अतएव मैं इसे वश में करना वायु को वश में करने के समान बहुत कठिन मानता हूं।

महात्मा बुद्ध ने भी कहा है—

दुरगमं एकचरं असरीरं गुहासयं॥

यह मन दूर-दूर तक जाने वाला, अकेले विचरण करने वाला, शरीर रहित और गुफा में रहने वाला है।

गुरु कबीर कहते हैं—"ई मन चंचल ई मन चोर, ई मन शुद्ध ठगहार" यह मन चंचल है, चोर है और यह मन निखालिश ठगने वाला है।

जन सामान्य से लेकर ज्ञानी, गुणी और विद्वान तक मन की चंचलता की बखान करते हैं तो वास्तव में यह मन चंचल होता क्यों है? मन चंचल है तो चंचलता का कोई तो कारण होगा, जिससे मन चंचल होता है। दूसरी तरफ संतजन, ज्ञानीजन मन की चंचलता को दूर करने का उपाय भी बताते हैं। बुद्ध, महावीर, कबीर जैसे अनेक महापुरुष हो चुके हैं और वर्तमान में भी हैं जिन्होंने मन की चंचलता से पार पा लिया और शांत मन के मालिक बन गये। इससे तो साफ है कि मन चंचल है तो मन की चंचलता से निजात भी पाया जा सकता है।

पहले समझते हैं कि मन की चंचलता है क्या? जिस समय में जिन बातों की आवश्यकता न हो उनको याद करना या सोचना मन की चंचलता है। इसको हम तीन भाग में बांट सकते हैं।

1. अनावश्यक चिंतन—जैसे कि आप भोजन करने बैठे हैं और फैक्ट्री, नौकरी या खेतीबाड़ी की याद कर रहे हैं जहां उसकी कोई आवश्यकता नहीं है। वहां पर खेतीबाड़ी या फैक्ट्री की याद करके कुछ कर भी नहीं सकते। सत्संग में कोई बैठा है और घर-परिवार की याद कर रहा है, यह अनावश्यक चिंतन है। वहां पर घर-परिवार की याद करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

अनावश्यक चिंतन से एकाग्रता भंग हो जाती है। हमारी कार्य-क्षमता प्रभावित होती है। किसी भी क्षेत्र में विकास करने के लिए एकाग्रता भी बड़ी आवश्यकता होती है, किन्तु अनावश्यक चिंतन से एकाग्रता नहीं रह जाती और हम कहीं सफल नहीं हो पाते।

2. असंभव चिंतन—जैसे कोई अस्सी साल का बूढ़ा व्यक्ति है और चिंतन करे कि मैं बीस-बाईस साल का जवान हूं तो यह असंभव चिंतन है। जो कभी हो नहीं सकता। कोई पक्षियों को उड़ते देखकर आकाश में पक्षियों-जैसे उड़ने की कल्पना करे यह असंभव चिंतन है।

3. समय-विरुद्ध चिंतन—जैसे किसी को दस दिन बाद यात्रा करनी हो और वह उसके बारे में सोच रहा है कि मैं ट्रेन पकड़ पाऊंगा या नहीं, ट्रेन में बहुत भीड़ तो नहीं होगी, लोग कैसे होंगे; अभी तो हम स्वस्थ हैं, हाथ-पैर और इन्द्रियां ठीक हैं पर यदि अस्वस्थ हो जायेंगे तो क्या होगा। लोग सेवा करेंगे कि नहीं, साथी-परिवार वाले साथ निभायेंगे कि नहीं। यह सब समय, विरुद्ध चिंतन है। दस दिन बाद यात्रा करनी है और अभी से सोच-सोच कर परेशान हो रहे हैं। सब यात्रा करते हैं और गाड़ी पर चढ़ जाते हैं तो हम क्यों नहीं चढ़ पायेंगे। अभी बुढ़ापा आया नहीं है, अशक्तता

आयी नहीं है, अभी लोग साथ निभा रहे हैं तो आगे भी निभायेंगे ही। सबका समय कटता है, हमारा भी समय कट जायेगा, किन्तु उस समय की बात को लेकर आज परेशान होना, चिंतित होना यह अनावश्यक चिंतन है।

इस प्रकार जो अनावश्यक चिंतन, असंभव चिंतन और समय-विरुद्ध चिंतन करते हैं यही चित्त या मन की चंचलता है। इस प्रकार के चिंतन में चित्त का बोझिल होना, अवसादग्रस्त होना या अशांत होना स्वाभाविक है। मन में जो कुछ भी चिंतन होता है वह अपने देखे, सुने और भोगे का संस्कार ही तो है। वही मन में पुनः-पुनः उठता रहता है और उसी में हम आन्दोलित और विचलित होते रहते हैं। उपनिषद् में एक बड़ा सुन्दर मंत्र है—

पराञ्चि खानि व्यतृणत्स्वयंभूस्तस्मात्पराङ्पश्यति नान्तरात्मन्।
कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुरमृत्वमिच्छन्॥

स्वयंभू (प्रकृति) ने मनुष्य की इन्द्रियों को बहिर्मुख बनाया है, इसलिए मनुष्य बाहर विषयों को देखता है। वह अन्तरात्मा को नहीं देखता। कोई बिरला विवेकी मोक्ष की इच्छा से मन-इन्द्रियों को बाहर से लौटाकर उन्हें अपने वश में करके भीतर आत्मा को देखता है।

तात्पर्य है कि हमारी इन्द्रियां बाहर की ओर खुली हैं और हम इनसे बाहर के विषयों को ग्रहण करते हैं। किन्तु जब हमारा विषयों का सम्पर्क राग या द्वेष पूर्वक होता है तो वह हमारे मन की चंचलता और अस्थिरता का कारण बनता है। हम जब भी किसी विषय को ग्रहण करते हैं तो प्रियता और अप्रियता का भाव उसके साथ जुड़ता है। जहां प्रियता का भाव जुड़ता है वहां राग करते हैं और जहां अप्रियता का भाव जुड़ता है वहां द्वेष करते हैं। ये दोनों राग और द्वेष मन की चंचलता का कारण बनते हैं।

मन की चंचलता का पहला कारण है राग और द्वेष। हमारी जिन विषयों के प्रति, जिन प्राणी और पदार्थों के प्रति प्रियता या अप्रियता का भाव है उन्हीं का चिंतन अधिक करते हैं। यदि प्रियता-अप्रियता का भाव न रहे तो चंचलता का कोई कारण ही नहीं बचेगा।

दूसरा कारण है रजोगुणी और तमोगुणी आहार। हम जो भी आहार ग्रहण करते हैं उसका हमारे शरीर के साथ-साथ मन पर भी असर होता है। यदि बहुत अधिक खट्टे-मीठे, तीखे, चरफरे, तले, भुने और बासी भोजन तथा हिंसा से प्राप्त मांसादि को खायेंगे तो उसका असर हमारे स्वास्थ्य पर तो पड़ेगा ही, आगे चलकर हम रोग-व्याधि और दुख के शिकार होंगे ही साथ ही मन भी अशांत और अव्यवस्थित हो जायेगा। यह कहा गया ही है, जैसा खाये अन्न वैसा होय मन्न। नशादि की वस्तुओं को खाने-पीने से भी मन अव्यवस्थित हो जाता है। नशा करने वाले व्यक्ति का न तन संतुलित हो पाता है और न ही मन।

भोजन हमेशा संतुलित, सुपाच्य और सात्त्विक हो तभी वह तन और मन के लिए हितकर होगा।

श्रुति भी कहती है—

आहारशुद्धौ सत्वशुद्धिः सत्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः
स्मृतिलम्भे सर्वग्रथीनां विप्रमोक्षः॥

आहार के शुद्ध होने पर मन शुद्ध होता है, मन के शुद्ध होने पर स्मृति एकाग्र होती है, स्मृति एकाग्र होने से सभी गांठें भलीभांति खुल जाती हैं अर्थात जीव मुक्त हो जाता है।

आहार शुद्ध हो, शुद्ध भाव से कमाया या किसी के द्वारा दिया गया हो, साथ-साथ उसको ग्रहण करने के समय मन की शुद्धता और सहजता आवश्यक है। किसी प्रकार के विकार जैसे क्रोध, घृणा या द्वेष या लालच आदि से ग्रसित होकर यदि सात्त्विक और अच्छा भोजन भी ग्रहण करेंगे तो भी उसका न तन पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा और न ही मन पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा। इन विकारों से ग्रस्त होने का अर्थ है बेहोशी और ऐसी अवस्था में भोजन ग्रहण करेंगे तो तन-मन व्यवस्थित कैसे हो सकते हैं! इसलिए भोजन में सात्त्विकता के साथ सजगता भी चाहिए।

कहा जाता है महात्मा बुद्ध एक गांव के पास निवास कर रहे थे। उनसे कुछ बच्चे मिलने आये और महात्मा बुद्ध को कुछ फल अर्पित किये। महात्मा बुद्ध

उन फलों में से सभी बच्चों को एक-एक फल बांटे और स्वयं भी एक फल लेकर कहा—चलो! सभी फल खाते हैं। तो बच्चे झट से छिलके उतारकर खाने लगे तो महात्मा बुद्ध ने कहा—नहीं, पूरी सजगता, पूरे होश के साथ छिलके उतारो और पूरे होश के साथ फल खाओ। सभी बच्चे पूरी सगजता पूर्वक महात्मा बुद्ध के साथ फल खाने लगे। आज उनको अद्‌भुत स्वाद के साथ अद्‌भुत संतोष और तृप्ति का अनुभव हो रहा था।

वास्तव में आहार की सात्त्विकता के साथ भाव की सात्त्विकता की भी आवश्यकता है। यही आगे जाकर मन की स्थिरता और सात्त्विकता में कारण बनेगा।

तीसरा कारण है संगति। कहा गया है—जैसी संगत कीजिए वैसे उपजै गुण।" जैसी संगत होगी वैसी ही हमारी मनोदशा का निर्माण होने लगेगा। यदि हम बराबर रजोगुणी या तमोगुणी लोगों का संग-साथ करेंगे तो हम भी रजोगुणी या तमोगुणी हो जायेंगे और यदि सतोगुणी का संग-साथ करेंगे तो मन सतोगुणी होगा। हम लगातार चंचल, क्रोधी, द्वेषी, प्रमादी लोगों का संग-साथ करेंगे तो हमारा मन शांत और सात्त्विक हो नहीं सकता। इसलिए अच्छे लोगों के संग-साथ की आवश्यकता है।

आज-कल मोबाइल भी सुसंग और कुसंग का माध्यम है। मोबाइल सुसंग भी है और कुसंग भी। यदि मोबाइल के उपयोग से मन में रजोगुण, चंचलता, वासना, क्रोध, द्वेष, घृणा, छल आदि बढ़ने लगे तो समझें कि मोबाइल कुसंग है और यदि सद्‌गुण, सदाचार, प्रेम, सहिष्णुता, सहजता और सरलता बढ़ने लगे तो मोबाइल सुसंग है। आजकल सोशल मीडिया के द्वारा ऐसी चीजें ही परोसी जा रही हैं जिनसे मनुष्य का चित्त चंचल हो, वासना बढ़े, राग-द्वेष प्रबल हो। अच्छी बातें भी मोबाइल में आती हैं किन्तु लोग प्रायः रजोगुणी चीजों और बातों के प्रति अधिक आकर्षित होते और फंसते जाते हैं।

चौथा कारण है अज्ञान। अज्ञान के कारण शरीर के प्रति मैं पन पैदा होता है। देह के प्रति आत्मबुद्धि पैदा होती है फिर मन का शरीर और शरीर के भोगों के प्रति लगाव अधिक होता जाता है जिसकी वजह से मन चंचल होता है। जहां भोगों की प्रवृत्ति होगी मन चंचल होगा ही। देह के प्रति मैं पन से मन की चंचलता बढ़ती जाती है।

कुल मिलाकर देखें तो राग-द्वेष पूर्वक विषयों की प्रवृत्ति, गलत खान-पान, कुसंग और अज्ञान मन की चंचलता के कारण हैं। यह सच है कि जब तक जीवन है खाना, पीना, देखना, सुनना सब होगा, इससे बच नहीं सकते, किन्तु जब यह सब आसक्ति और रागपूर्वक होगा तो यही हमारे लिए चंचलता और दुख का कारण बनेगा किन्तु सहज भाव पूर्वक कर्म-व्यवहार करेंगे वह हमारे लिए सुख और स्थिरता का कारण होगा। सजगता और सहजता हमें दुख से ही नहीं गलत भावों और संस्कारों से भी बचाती हैं। हम यदि प्रत्येक कर्म सहजता और सजगता पूर्वक करने लगें तो फिर मन की चंचलता का कोई कारण ही नहीं बचेगा। ❑

तृष्णा का कहीं अन्त नहीं है

रचयिता—रामेन्द्र दास

तृष्णा का कहीं अन्त नहीं है,
तृष्णालू सज्जन, संत नहीं है।

भागे जो सदा मन के पीछे,
वो होता अपना कंत नहीं है।

जो छोड़ दिया जन मन सेवा,
बटोरने लगे तो महंत नहीं है।

भटकते हैं वीराने में वे ही,
जिसके जीवन में बसंत नहीं है।

गुरु कबीर बीजक पढ़ जानो,
उसमें कोई कथा दंत नहीं है।

रामेन्द्र जो खुद में जिया,
उस जैसा कोई भगवंत नहीं है।

व्यवहार वीथी

जल्दबाजी में निर्णय न लें, धैर्य रखें

जीवन में कई बार ऐसा अवसर आया होगा कि आपको दूसरों से सहायता, सहयोग, आश्रय मांगना पड़ा होगा और सामने वाले ने सहायता-सहयोग करने से इनकार कर दिया होगा। उसके इनकार करने पर आपके मन में उसके लिए पता नहीं कैसे-कैसे गलत विचार और भाव आये होंगे। मन-ही-मन आपने उसको बहुत भला-बुरा कहा होगा। उसके इनकार करने के क्या कारण हो सकते हैं, इस पर आपने बहुत कम विचार किया होगा। इनकार करने के पीछे उसकी अपनी कोई मजबूरी रही होगी, वह खुद किसी समस्या से परेशान रहा हो या उस इनकार के पीछे आपकी ही कोई भलाई छिपी रही है। इन बातों पर कभी आपने सोचा नहीं होगा।

जब आप किसी से कोई सहायता मांगें और वह इनकार कर दे तो जल्दबाजी में उसके लिए कोई गलत विचार या भाव अपने मन में न लायें। हो सकता है जिससे आप सहायता मांग रहे हैं उसके इनकार कर देने पर आपको किसी दूसरी जगह से अधिक अच्छी सहायता और सुरक्षा मिल जाये। इस संदर्भ में एक बड़ी प्यारी-सी प्रचलित कहानी है—

बरसात के दिन आने वाले थे। एक चिड़िया अपने बच्चों के साथ नदी किनारे खड़े एक वृक्ष के पास गयी और याचना करती हुई उस वृक्ष से कही—क्या वर्षा के पानी से बचने के लिए हम तुम्हारी डाल पर अपना घोंसला बना लें? वैसे किसी बड़े वृक्ष की डालियों पर तमाम पक्षियों के घोंसले बने होते हैं। वृक्ष पक्षियों-चिड़ियों के आश्रयस्थल होते ही हैं। परन्तु उस वृक्ष ने बड़ी सख्ती और बेरुखी से उस चिड़िया को अपनी डाल पर घोंसला बनाने से मना कर दिया। उससे निराश होकर चिड़िया अपने बच्चों के साथ वहीं पास में खड़े एक दूसरे पेड़ के पास गयी, तो उस पेड़ ने उस चिड़िया को अपनी डाल पर घोंसला बनाने की अनुमति दे दी।

वर्षा ऋतु आरंभ हुई। एक दिन तेज आंधी के साथ खूब जोर की वर्षा हुई। वह पहला पेड़ उस आंधी और वर्षा को झेल नहीं पाया और जड़ सहित उखड़कर नदी की धारा में बहने लगा। उस पेड़ को नदी की धारा में बहते देखकर चिड़िया कहने लगी—ऐ पेड़! एक दिन मैं तुम्हारे पास सहायता मांगने गयी थी, परन्तु तुमने बड़ी बेरुखी से इनकार कर दिया। आज तुम्हारी उस बेरुखी की सजा तुम्हें मिल गयी और तुम जड़ सहित उखड़कर नदी में बहे जा रहे हो।

पेड़ ने बड़े शांत भाव से कहा—तुम्हें आश्रय देने से इनकार करने के लिए मुझे क्षमा कर देना। मैं जानता था कि मेरी जड़ें कमजोर हो चुकी हैं और मैं इस बरसात को झेल न पाऊंगा। तुम्हें आश्रय देकर मैं तुम्हारी तथा तुम्हारे बच्चों की जान को खतरे में डालना नहीं चाहता था। इसलिए मैंने तुम्हें आश्रय देने से मना कर दिया था।

कहानी से यह सीख मिलती है कि किसी के इनकार करने को उसकी हृदयहीनता या निर्दयता न समझें। जल्दबाजी में उसके लिए गलत भाव अपने मन में न लायें। क्या पता उस इनकार में आपका हित समाया हुआ हो। कौन किस परिस्थिति में है और किसकी क्या मजबूरी है, इसे समझने का प्रयास करें। और फिर, जरा अपने बारे में सोचें। क्या जिस-जिस ने आपसे जिस-जिस समय जिस-जिस प्रकार की सहायता मांगी है, आपने सबकी सहायता की है? क्या आपने कभी किसी को इनकार नहीं किया है? हो सकता है आप सब प्रकार से संपन्न, सबल और सामर्थ्यवान रहे हों और आपने सबकी सब प्रकार से सहायता की हो

और सबको आश्रय दिया हो, परन्तु सभी लोग तो आप जैसे संपन्न, सबल तथा सामर्थ्यवान नहीं हो सकते। इसलिए किसी के इनकार-मना करने पर अपने मन को खराब न करें। अपना प्रयास जारी रखें, उम्मीद कभी न छोड़ें।

यह सदैव याद रखें कि जल्दबाजी में किसी के बारे में कोई गलत राय न बनायें। ऐसा करना स्वयं आपके लिए नुकसानदेह हो सकता है। धैर्य रखें और प्रतीक्षा करें। हो सकता है आगे बहुत सुंदर परिणाम आने वाला हो। निम्न कहानी में इसी बात की सीख मिलती है।

एक छोटा बच्चा अपने दोनों हाथों में एक-एक सेब फल लिये दरवाजे पर खड़ा था। उसके पिता ने देखा तो कहा—बेटा! क्या एक सेब मुझे दोगे? पिता की बात सुनते ही बच्चे ने दायें हाथ में रखे सेब को दांतों से कुतर लिया। पिता आगे कुछ कहता उसके पहले ही बच्चे ने बायें हाथ में रखे सेब को भी दांतों से कुतर लिया। यह देखकर पिता स्तब्ध रह गया और सोचने लगा कि इतनी छोटी उम्र में इसके अंदर इतना स्वार्थ कैसे और कहां से आ गया। पिता को सोच में देखकर अपने दायें हाथ को आगे बढ़ाते हुए बच्चा कहता है—पिताजी! आप ये वाला सेब ले लीजिये। ये वाला सेब ज्यादा मीठा है।

जरा सोचें, बच्चे को दोनों सेब को दांतों से कुतरते देखकर उसका पिता वहां से आगे चला गया होता तो सदा के लिए उसके मन में यही भाव बना रहता कि उसका बेटा बड़ा स्वार्थी है। बच्चा सेब को दांतों से क्यों कुतर रहा है इसको जाने बिना निष्कर्ष निकालना कितना गलत होता। बच्चे के मन का भाव कितना सुंदर है कि पिता को ज्यादा मीठा वाला सेब दूं। और पिता सोच रहा है कि बच्चा स्वार्थी हो गया है। उसके मन में अधिकार की भावना है। इसलिए एकाएक किसी के बारे में कोई धारणा बनाने के पहले सौ बार सोचें, तब कोई धारणा बनायें।

इतना अवश्य ध्यान रखें कि किसी कारणवश आपको किसी से कोई सहायता मांगनी पड़े और वह इनकार कर दे तो उसके बारे में कोई गलत धारणा न बनायें और उसके बारे में गलत न सोचें, किन्तु कोई मुसीबत का मारा आपसे सहायता मांगने आये तो जो बन सके उसकी सहायता अवश्य करें। यदि आप सहायता करने की स्थिति में नहीं हैं तो इनकार करते हुए भी उसके प्रति हमदर्दी बनाये रखें और उसके विश्वास को टुटने न दें।

यह सदैव याद रखें कि किसी का भी समय एक जैसा नहीं रहता। जिस प्रकार दिन के बाद रात और रात के बाद दिन आते-जाते रहते हैं, ठहरता कोई नहीं है उसी प्रकार सुख-दुःख, लाभ-हानि, अनुकूलता-प्रतिकूलता आदि एक के बाद दूसरा आते-जाते रहते हैं। न तो अपनी सम्पन्नता का अहंकार एवं प्रदर्शन करें और न दूसरों की विपन्नता का मजाक एवं तिरस्कार। हर परिस्थिति में धैर्य बनाकर रखें।

यदि आपके जीवन में कोई प्रतिकूलता-विपत्ति आ जाये तो घबड़ायें नहीं। प्रतीक्षा करें और धैर्य रखकर समाधान खोजें। कोई ऐसी समस्या या विपत्ति नहीं है जिसका समाधान न हो। विश्वास रखें, रात्रि कितनी भयावनी और अंधकारपूर्ण क्यों न हो कुछ देर बाद सूर्योदय अवश्य होगा और सूर्योदय होते ही अंधकार सर्वथा विलीन हो जायेगा। जब यह लगे कि चारों तरफ से रास्ता बंद हो चुके हैं, निकलने का कोई रास्ता नहीं दिखाई पड़ रहा है, तब भी धैर्य रखें और मन में सकारात्मक भाव रखकर विचार करें तब लगेगा कि बंद रास्ते खुलने लगे हैं। सोशल मीडिया में एक कहानी प्रचलित है जिससे इसी की प्रेरणा मिलती है—

एक किसान का एक बैल एक कुआं में गिर गया। बैल स्वयं तो कुआं से बाहर निकल नहीं सकता। बैल जोर-जोर से आवाज करता रोता रहा। किसान बैल की आवाज सुनकर सोचने लगा कि उसे क्या करना चाहिए। अंत में किसान ने निर्णय लिया कि बैल बूढ़ा

हो गया है। इसे कुआं से बाहर निकालने में कोई विशेष लाभ होने वाला नहीं है, अतः इसे इसी कुआं में दफना देना चाहिए।

बैल को कुआं में दफनाने के लिए किसान ने अपने पड़ोसियों से मदद मांगी। किसान तथा उसके पड़ोसी फावड़ा लेकर आये और फावड़ा से कुआं में मिट्टी डालने लगे। जब बैल की पीठ पर मिट्टी पड़ने लगी तब बैल और जोर-जोर से रोने लगा। कुछ देर तक तो बैल रोता रहा, क्योंकि सबको मृत्यु का भय तो होता ही है। कुछ देर बाद बैल का रोना एकाएक बंद हो गया। सब लोग फिर भी मिट्टी डालते रहे। जब बैल का रोना बंद हो गया तब किसान ने कुएं में झांककर देखा तो आश्चर्यचकित रह गया। उसने देखा कि जब बैल की पीठ पर मिट्टी पड़ती तब बैल अपने शरीर को हिलाकर मिट्टी को गिरा देता और उसे पैरों से खींचकर बराबर कर देता और उस पर चढ़ जाता। जैसे-जैसे किसान तथा उसके पड़ोसी कुएं में मिट्टी गिराते वैसे-वैसे बैल अपना शरीर हिलाकर मिट्टी नीचे गिरा देता और पैरों से मिट्टी खींच-खींच कर बराबर करता जाता और उस पर खड़ा हो जाता। इस प्रकार कुआं मिट्टी से भरता गया और बैल ऊपर आता गया। ऐसा करते-करते बैल लगभग जमीन के बराबर आ गया और कुआं से बाहर आ गया।

ध्यान रखें, कुछ प्रतिकूलता-विपत्ति तो प्रकृति की ओर से आयेगी और कुछ आपके आस-पास रहने वाले आपके ऊपर निंदा, आलोचना, बुराई, वैर-विरोध की मिट्टी गिरायेंगे। इससे घबड़ाना नहीं है, किन्तु इसे पायदान बनाकर ऊपर चढ़ते जाना है। धैर्य, परिश्रम, सकारात्मक विचार और दृढ़ मनोबल यदि हैं तो फिर आप कभी पीछे नहीं हटेंगे, आगे ही बढ़ते जायेंगे। इसलिए न तो जल्दबाजी में कोई निर्णय लें, न किसी के लिए कोई गलत धारणा या भाव बनायें और न ही कभी साहस छोड़ें। परिणाम सुंदर ही आयेगा।

—धर्मेन्द्र दास

गुरु ज्ञान अनमोल

रचयिता—राधाकृष्ण कुशवाहा

मुद्रा बदले वस्तु जो, उसका निश्चित मोल।
किन्तु ज्ञान गुरु से मिले, उसका मोल न तोल॥

जीवन दरिया में बहे, धन बल उम्र सोहाय।
सत्पथ चल निर्मल किया, सोना लिया बनाय॥

खा पीकर साधु भी, ले विवेक की छांव।
रहते हैं संसार में, जस पानी में नाव॥

मुख कुरूप से क्या हुआ, मन सुरूप जो होय।
हर पल बरसे शान्ति सुख, मुख छिपाय दुख रोय॥

कुमन छोड़ ले सुमन को, नमन होय नमनाय।
इष्टदेव की भक्ति से, जीवन खिलता जाय॥

मन की वृत्ति छछुन्दरी, विषयन में ललचाय।
अपने पति को छोड़कर, जार संग में जाय॥

सदा पूज्य हैं, जो कहें, मुझ को रट्टू कीर।
उनको अर्पित बन्दगी, मुख-सिर पान-अबीर॥

गंगा मइया नित जपें, करें आरती लाख।
फिसले गच गूलर हुए, नहीं करेंगी माफ॥

बाहर माजत माजते, अन्तः हुआ कलूठ।
केवल मन को शोध लें, बाकी सब कुछ झूठ॥

करते कब से साधना, कहें नहीं मन ठीक।
ऊपर पेटी धोवते, कस कपड़ा हो नीक॥

निर्मल मन की चूनरी, सद्गुण गहना धार।
निज स्थिति की नाव से, हो जा भव से पार॥

जिन्हें मोक्ष की चाहना, चाह गरीबी लीन्ह।
राज-पाट को त्याग कर, जग की सेवा कीन्ह॥

मिर्चा नीबू ईख सब, अनुकूलहिं रस लीन्ह।
बीजी असर प्रधानता, तीता खट मीठ कीन्ह॥

काल गाल में पीसता, सब कुछ एक समान।
करलें निज कल्याण झट, नर तन दुर्लभ जान॥

पशु-पक्षी का वध करे, जपे खुदा भगवान।
कब्र बनाया पेट को, कहाँ रहा इंसान॥

कैसे सुलझाएं तनाव की गुत्थियां

लेखक—श्री ललितप्रभ सागर जी महाराज

तनाव के रोग : दिल से दिमाग़ तक

तनाव मन का सबसे भयंकर रोग है। रोगी मन ही शरीर को बीमार करता है। निश्चित तौर पर तनाव से उबरा जा सकता है, पर इससे पूर्व यह समझना जरूरी है कि वह हमारे तन, मन और जीवन पर क्या प्रभाव डालता है? तनाव के वश में है कि हमारे गृहस्थ जीवन को दुःखदायी कर दे, जीवन-विकास को रोक दे, मन की प्रसत्रता को भंग कर दे और एकाकीपन में जीने को मजबूर कर दे। पता नहीं ऐसे कितने ही काम तनाव कर देता है। आप अगर स्वयं गहरे तनाव में जी रहे हैं या किसी तनावग्रस्त व्यक्ति के साथ जीने का मौका मिला है तो तनाव-जनित रोगों को जरूर देखा होगा। दिल की धड़कन से लेकर पेट और आंतों तक की बीमारियों को तनाव पैदा करता है। किसी को यह कब्ज की बीमारी कर देता है तो किसी को दस्त की। किसी के गले में रोग पैदा कर देता है तो किसी के कमर और जोड़ों में। थकान, कमजोरी, स्मरण-शक्ति का ह्रास, आत्मविश्वास में कमी और अनिद्रा जैसी बातें तो यह हर किसी के साथ कर ही देता है।

तनावग्रस्त व्यक्ति जब देखो तब उदास ही मिलता है। खुशियों के अवसर आने पर भी वह ग़म और उदासी में ही जीता है। कामकाज में उसकी दिलचस्पी नहीं रहती। किसी से बात करना भी वह पसंद नहीं करता। हर समय वह एक विशेष उदासी में जीता है। अगर कोई चेहरा लटकाकर बैठा हो तो एक बच्चा भी पूछ लेगा, 'क्या बात है, किस बात का टेंशन है?' जैसे तेज धूप में फूल मुरझा जाते हैं, वैसे ही तनाव में हमारा चेहरा। चिकित्सकों को चाहिए कि जब वे किसी के शरीर का इलाज करें उससे पहले उसके मन का इलाज जरूर कर लें।

तनाव सीधे तौर पर दूसरा प्रभाव डालता है हमारी रोगों से लड़ने की क्षमता पर। वह हमारी रोग-निरोधक क्षमता को घटा देता है। अमेरिका में डॉ. बौक ने लगभग 1500 छात्रों पर एक प्रयोग किया। उन्होंने ऐसे छात्रों को चुना जो सदैव जुकाम और पेट के रोग से ग्रस्त रहते थे। रोगियों से गहरी बात करने पर उन्हें पता लगा उनमें प्रायः अधिकांश विद्यार्थी ऐसे थे जो भय, गम, अवसाद, निराशा या तनाव से पीड़ित थे। डॉ. बौक ने प्रयोग किया और आश्चर्यजनक परिणाम सामने आये कि जुकाम और पेट के रोग तब मिट गये जब मनोवैज्ञानिक समझ देकर भय और तनाव से छात्रों को मुक्त कर दिया गया।

मन का तन पर गहरा प्रभाव पड़ता है, अगर तनावग्रस्त व्यक्ति को उसके रोग के मूल कारणों का पता चल जाये तो वह शीघ्र स्वस्थ हो सकता है। भय, चिंता, फिक्र ये सबसे पहले हमारे दिमाग पर अपना प्रभाव डालते हैं। शरीर की संचालन-व्यवस्था में मस्तिष्क का सबसे बड़ा हाथ है। विपरीत मनोभाव मानसिक खिंचाव पैदा करते हैं। मानसिक खिंचाव हमारे शरीर पर अपना विपरीत प्रभाव छोड़ता है। परिणामस्वरूप शरीर में विभिन्न प्रकार के रोग पनपने शुरू हो जाते हैं।

माइग्रेन की समस्या का मूल कारण भी तनाव ही है। साथ ही रोग-प्रतिरोधक क्षमता में कमी आने के कारण आए दिन कई तरह के रोग पैदा हो जाते हैं। उससे याददाश्त तो कमजोर होती ही है।

मन के हारे हार है

तनाव पहला प्रभाव डालता है व्यक्ति की कार्यकुशलता पर। जैसे-जैसे व्यक्ति इसके मकड़जाल में उलझता है, उसके मनोबल में कमजोरी आनी शुरू हो जाती है। हमने कई बार देखा है कि जब किसी टूर्नामेंट में दो देशों की टीम एक मैदान में उतरती हैं तो लोग पहले ही अंदेशा लगा लेते हैं, खिलाड़ियों के चेहरे को देखकर कि कौन जीतेगा, कौन हारेगा? जो मैदान में उतरने से पहले ही दूसरी टीम को लेकर मनोवैज्ञानिक दबाव में आ गया है, उसका हारना तय हो जाता है।

अगर आप दूसरी टीम से जीतना चाहते हैं तो मैदान में उतरने से पहले ही उस पर इतना मनोवैज्ञानिक दबाव डाल दीजिये कि मानसिक रूप से वह स्वयं को हारा हुआ महसूस करने लग जाये। ऐसी स्थिति में खिलाड़ी तनावग्रस्त हो जाता है और उसका आत्मविश्वास कमजोर हो जाता है। मानसिक रूप से हारा हुआ व्यक्ति मैदान में भी हारता ही है। हमारे जीवन की असफलताओं का पहला कारण है हमारी मानसिक कमजोरी।

तनावग्रस्त व्यक्ति एक विशेष प्रकार की परेशानी से ग्रस्त होता है और हर समय उदास रहता है। अपने आप से ही अप्रसन्न रहना, खुद को हीन समझना और उन लोगों से दूर रहना जो हमारी प्रसन्नता के कारण हैं, ये सब तनाव के स्पष्ट प्रभाव हैं। उदासी और अप्रसन्नता से हमारी समझ, तर्कशक्ति और वैचारिक क्षमता कमजोर हो जाती है और हर समय व्यक्ति का दृष्टिकोण निराशावादी हो जाता है। ऐसा लगता है जैसे वह कुछ नहीं कर पाएगा। छोटी-मोटी बातों पर वह अपने-आपको अपराधी मानता है और उसका शरीर कुम्हलाया-सा हो जाता है। उसे भोजन करने के लिए पूरी भूख नहीं लगती और भोजन करने बैठ जाये तो भोजन स्वादिष्ट नहीं लगता। शायद मन की शांति का सुकून तो उसे सपने में भी नहीं मिल पाता।

भरोसा रखें, प्रकृति की व्यवस्था पर

ऐसा नहीं है कि तनाव से छुटकारा नहीं पाया जा सकता। आवश्यकता सिर्फ अपने आप पर नियंत्रण रखने की और अनुकूल वातावरण बनाने की है। उससे मुक्ति पाने के लिए जीवन में थोड़ा-सा परिवर्तन ही पर्याप्त होता है। आखिर कैसे बचें तनाव से शायद हर व्यक्ति के भीतर यह प्रश्न उठता है। अगर थोड़ी-बहुत सावधानियां रखी जायें तो हम तनाव से बच सकते हैं।

तनाव-मुक्ति का पहला उपाय है निश्चलता-'रिलेक्सेशन'। अगर आप चिंताग्रस्त या भ्रमित हैं, कई प्रकार के मानसिक दुःखों के शिकार हैं और परिणामस्वरूप शरीर में कई प्रकार के रोग प्रभावी हो गये हैं तो ऐसी स्थिति में निश्चलता, विश्राम, शरीरभाव से मुक्ति हमें रोग-मुक्त कर सकती है। पहले चरण में मैं मन की निश्चलता के बारे में कहना चाहूंगा। व्यक्ति सदैव यह सोचकर बेफिक्र रहे कि जो हुआ वह तो होना ही था इसलिए हो गया और जो नहीं हुआ उसका होना संभव नहीं था इसलिए नहीं हुआ। किसी वस्तु के मिलने पर गुमान न हो और खो जाने पर गिला न हो। प्रकृति की अपनी जबरदस्त व्यवस्था होती है और वह प्रायः हमारी हर जरूरत को पूरा करती है। बच्चा पीछे पैदा होता है और उसके लिए मां के आंचल में दूध की व्यवस्था पहले होती है। दुनिया में असंख्य जानवर जन्म लेते हैं, प्रकृति उनकी भी व्यवस्था करती है। माना कि जानवर खेती नहीं कर सकते पर मनुष्य अपने लिए अन्न पाने के लिए जब खेती करता है तो धान पीछे आता है किंतु जानवरों के लिए घास पहले उग आती है और इस तरह मनुष्य एवं पशु दोनों के आहार की व्यवस्था प्रकृति द्वारा हो जाती है।

करें तनावोत्सर्ग ध्यान

तनाव से बचने या उबरने के लिए प्रतिदिन 15 मिनट ही सही भौंहों के बीच आज्ञाचक्र पर अपनी मानसिकता को एकाग्र करने की कोशिश करें। उससे हम 2-3 माह में ही तनाव से उबर जायेंगे। अगर आपको लगता है कि तनाव ने आपको गहरे जकड़ लिया है तो आप शरीर की निश्चलता का ध्यान करें।

निश्चलता का अर्थ होता है शरीर की वह अवस्था जब हमारे सम्पूर्ण शरीर की मांसपेशियां और मस्तिष्क की सम्पूर्ण कोशिकाएं पूर्ण विश्राम में हों। निश्चलता हमारी मांसपेशियों के तनाव को समाप्त करती है। अगर आप किसी भी प्रकार के तनाव से ग्रस्त हैं तो आप तनावोत्सर्ग ध्यान करें। इस ध्यान की प्रक्रिया से गुजरना मन-मस्तिष्क के लिए काफी उपयोगी होता है।

तनावोत्सर्ग ध्यान करने के लिए किसी शांत स्थान का चयन करें। ऐसा कोई स्थान या कमरा चुनें जहां किसी तरह का कोई व्यवधान न हो। वैन्टीलेटर के अलावा कमरे के दरवाजे एवं खिड़कियां बंद भी रख सकते हैं ताकि हल्का-सा अंधेरा हो जाये। यदि रात को कर रहे हों तो खिड़कियां खुली भी रखी जा सकती हैं। फर्श पर कोई आरामदेह आसन या गद्दा बिछा लें ताकि लेटने में तकलीफ न हो। सावधान रहें कि इस विधि से गुजरते समय ढीले कपड़े पहनना ज्यादा उचित रहता है।

अगर सर्दी हो तो कोई शाल भी ओढ़ सकते हैं और गर्मी हो तो हवा की व्यवस्था कर सकते हैं। आप तनावोत्सर्ग विधि प्रारम्भ करें। बड़े आराम से लेट जायें। दोनों पांव थोड़े फासले पर रहें, दोनों हाथ शरीर से थोड़े दूर और सीधे रखें, हथेलियां ऊपर की ओर हों। हथेलियां इतनी ढीली छोड़ दें कि अंगुलियां स्वतः ही थोड़ी-सी मुड़ जाएं।

इस विधि में कुछ बातों की सावधानी रखनी उचित रहती है। सांस आराम से और आहिस्ते-आहिस्ते लें और धीरे-धीरे उसे सहज छोड़ दें। सांस बाहर निकालने के बाद अंदर खींचने की जल्दी न करें और अंदर खींचने के बाद बाहर निकालने की भी जल्दी न करें। दोनों ही प्रक्रियाओं में आप जितनी सहजता से सांस को अंदर करने के बाद रोक सकते हैं तो अवश्य रोंके। सबसे पहले शरीर को ढीला छोड़कर मधुर मुस्कान लें। शरीर निर्जीव वस्तु की तरह पड़ा रहे और मधुर मुस्कान जारी रहे। अगर हंसने का जी कर रहा है तो किसी अच्छे से चुटकले या घटनाप्रसंग को यादकर हंस भी लें और फिर स्वसंबोधन द्वारा अपने शरीर को तनाव-मुक्ति की प्रक्रिया में प्रवेश करने दें।

धीरे-धीरे श्वास लेते हुए पूरे शरीर में कसावट दें। श्वास को रोकते हुए सम्पूर्ण ऊर्जा के साथ समस्त मांसपेशियों को नाभि की ओर दो क्षण के लिए खिंचाव दें और तत्क्षण उच्छ्वास के साथ शरीर ढीला छोड़ दें। यह प्रक्रिया कुल तीन बार करें। अब शरीर के प्रत्येक अंग को मानसिक रूप से देखते हुए एक-एक अंग को शिथिल होने के लिए आत्म-निर्देशन दें और प्रत्येक अंग में प्रसन्नता और मुस्कुराहट को विकसित करें। पैर के अंगूठे से लेकर सिर तक रोम-रोम को प्रमुदितता और अन्तर प्रसन्नता का सुझाव दें। सर्वप्रथम पांव के अंगूठे, अंगुलियां, तलवा, पंजा, एड़ी, टखना, पिंडली, घुटना, जांघ, नितंब, कटिप्रदेश को शिथिल करते हुए वहां प्रसन्नता का संचार करें। फिर हाथ के अंगूठे, अंगुलियों, हथेली, पृष्ठ भाग, कलाई, हाथ, कोहनी, भुजा एवं कंधों को प्रसन्नता और मुस्कुराहट का सुझाव दें। तदुपरान्त पेट, पेट के अंदरूनी अवयव, बड़ी आंत, छोटी आंत, पक्वाशय, आमाशय, किडनी, लीवर तथा हृदय, फेफड़े, पसलियां, पूरी पीठ, रीढ की हड्डी, कंठ और गर्दन के भाग में शिथिलता, प्रसन्नता एवं मुस्कुराहट को विकसित करें।

इसके बाद चेहरे के एक-एक अंग ठुड्डी, होंठ, गाल, आंख, कान, नाक, ललाट, सिर, बाल, मस्तिष्क के स्नायु और कोशिकाओं पर आनन्द भाव केन्द्रित करें और मन ही मन मुस्कुराएं। आत्मनिरीक्षण करें और देखें कि यदि अब भी तनाव महसूस हो रहा है तो खिलखिलाकर हंसते हुए लोटपोट हो जायें और तनाव-मुक्ति बरकरार रखें।

सकारात्मक सोच : तनाव-मुक्ति की औषधि

तनाव-मुक्ति का दूसरा उपाय है—'सकारात्मक सोच।' व्यक्ति अपनी सोच को सदैव विधायात्मक रखे। जैसी सोच होती है वैसा ही अनुकूल और प्रतिकूल हमारा जीवन होता है। किसी की छोटी-मोटी टिप्पणी पर ध्यान न दें और अपने द्वारा भी छोटी-मोटी घटनाओं पर टिप्पणी न करें। सकारात्मक सोच एक ऐसा मंत्र है जिससे चुटकियों में ही व्यक्ति तनावमुक्त हो सकता है। तनाव-मुक्ति की बेहतर औषधि है 'सकारात्मक सोच'। किसी ने हमारे लिए अच्छा किया और हमने भी उसके लिए अच्छा किया—यह जीवन की सामान्य व्यवस्था है। प्रेम के बदले में प्रेम दिया ही जाता है, लेकिन सकारात्मक सोच वाले व्यक्ति की यह विशेषता होती है कि वह अपना अहित करने वाले का भी हित करता है, शत्रु में मित्रता के सूत्र तलाशने की कोशिश करता है। यह कांटे बोने वाले के लिए भी फूल बिछाता है। सकारात्मकता व्यक्ति के मनोमस्तिष्क में विपरीत चिंतन को घर नहीं करने देती। आवेश, आशंका, आग्रह आदि सोच के वे दोष हैं, जो हमें नकारात्मकता की ओर धकेलते हैं। जब भी किसी बिंदु पर सोचें, समग्रतापूर्वक और विधायक नजरिये से सोचें।

प्रसन्न रहें, तनाव-मुक्ति के लिए

सदैव प्रसन्न रहना तनाव से बचने का अच्छा टॉनिक है। जिस प्रकार अंधे के लिए लकड़ी सहारा

बनती है और बीमार के लिए दवा, वैसे ही तनावग्रस्त व्यक्ति के लिए प्रसन्नता औषधि का काम करती है। हंसने, मुस्कुराने, प्रसन्न और आनन्दित रहने से मन का मैल तो साफ होता ही है, शरीर की सम्पूर्ण कोशिकाएं-नाड़ियां भी सक्रिय होती हैं। एक प्रसन्नता सौ दवा का काम करती है।

जो काम दवा की दस खुराक नहीं कर पाती है, वह काम प्रसन्नता की एक खुराक कर जाया करती है। प्रसन्नता हमारे भीतर उत्साह पैदा करती है। उत्साह से मनोयोग जन्मता है और मनोयोग किसी भी कार्य की पूर्णता का प्राण होता है। उत्साहहीन व्यक्ति भले ही कितना भी काम करता रहे लेकिन उसे मनचाहा परिणाम नहीं मिल सकता। दुनिया के जितने भी महापुरुषों ने बड़े-बड़े कार्य किये हैं, उनके पीछे उनका उत्साह ही था।

व्यस्त रहें, मस्त रहें

एक और उपाय किया जा सकता है तनाव-मुक्ति के लिए वह यह है कि कार्य से प्यार करें। हर समय व्यस्त रहो, हर हाल में मस्त रहो— यही तनाव-मुक्ति की रामबाण दवा है। मुझे नहीं मालूम कि शैतान का घर किस पाताल लोक में होता है पर यह अनुभव की बात है कि खाली दिमाग शैतान का घर होता है। अगर आपके जीवन में कोई बड़ी दुर्घटना घटित हो गयी है, पति-पत्नी या पुत्र की मृत्यु भी हो गयी है तो भी आप इस सदमें से उबर सकते हैं अगर आप अपने आपको किसी श्रेष्ठ कर्मयोग से जोड़ लें।

एक महानुभाव को मैं जानता हूं जिनके पत्नी और बेटी की हत्या हो गयी, घर में डकैती हो गयी। लेकिन उन्होंने दूसरी शादी करने की बजाय 'होनी' को ही स्वीकार किया और किसी प्रकार के अवसाद या तनाव से कुंठित होने की बजाय कुछ ही दिनों में स्वयं को सामाजिक कल्याण की गतिविधियों से जोड़ लिया जिसके परिणामस्वरूप वे जीवन के सबसे बड़े सदमे से सहज ही उबर गये।

जीवन का महान योग : कर्मयोग

जीवन में किसी भी कार्य को तन्मयता से करें और उसे बोझ समझने की बजाय योग समझें। अगर आप लगनपूर्वक किसी भी कार्य को सम्पादित करते हैं तो आप उस कार्य को शीघ्रता से तो पूर्ण कर ही लेते हैं, साथ ही साथ अनावश्यक मानसिक खिंचाव से भी बच जाते हैं। अगर तुम झाड़ू भी निकालो तो इतनी लगनपूर्वक कि उधर से स्वर्ग के देवता भी गुजर जायें तो तुम्हारी पीठ थपथपायें और कह पड़ें कि क्या बेहतर सफाई की है।

इससे जुड़ा हुआ ही एक और बिन्दु है, एक वक्त में एक ही काम करें। यह भी कर दूं, और वह भी कर दूं, सोचकर अपने दिमाग को भारी करने की बजाय धीरे-धीरे ही सही व्यवस्थित तौर पर एक-एक कार्य को पूर्ण करें। दिन भर में बीस कार्यों की योजना बनाने की बजाय किन्हीं दो कार्यों को पूर्ण करना कहीं ज्यादा लाभदायी है। जो व्यक्ति अपने दिन भर के कार्यों को समयबद्ध व्यवस्थित तौर पर करता है, वह सात दिन के कार्यों को एक दिन में पूरा कर लेता है। अच्छा होगा कि सुबह उठने के बाद जब आप आवश्यक कार्यों से निवृत्त हो जायें तो दिन भर में किये जाने वाले कार्यों की एक सूची बना लें और फिर उसमें पहले किसको करना है और पीछे किसको करना है, इसके आधार पर क्रम डाल दें। आप पाएंगे कि आपने सभी कार्यों को सरलता से सम्पादित कर लिया है और कोई भी काम आपके लिए तनाव का कारण नहीं बना है।

न करें हड़बड़ी, होगी नहीं गड़बड़ी

एक सावधानी और रखें। कार्य को जल्दबाजी में पूर्ण करने का प्रयास न करें। हम व्यस्त रहें पर अस्त-व्यस्त न रहें। हड़बडी में गड़बड़ी की ज्यादा संभावना होती है और ज्यादा जल्दबाजी हमारे दिमाग में खिंचाव और तनाव पैदा करती ही है। इससे कार्य जल्दी होने की बजाय देरी से होता है और शक्ति भी कहीं ज्यादा खर्च होती है। जीवन में अपने परिश्रम पर भरोसा रखें, मुफ्त के मालपुए खाने की बजाए मेहनत की 'रूखी-सूखी' रोटी बेहतर होती है। जो लोग जीवन में कर्मयोग

से जी चुराते हैं और रातों-रात करोड़पति होने का ख्वाब देखा करते हैं, वे लोग जीवन में सदैव वहीं के वहीं पड़े रह जाते हैं।

मुझे याद है कि किसी पर्यटनस्थल पर एक होटल खुला। दुनिया का अद्भुत होटल ! बाहर लिखा था 'आप होटल में आयें, जी भर कर खायें। जो इच्छा हो सो खायें, बिल की तनिक भी चिंता न करें। आपके बेटे-पोतों से उसका भुगतान ले लिया जायेगा।' एक मुफ्तखोर उधर से गुजरा। उसने भी उसे पढ़ा। उसे लगा कि मुफ्त में माल खाने का यह सबसे अच्छा अवसर है। मेरी तो शादी ही नहीं हुई है। यह बिल का भुगतान किससे लेगा? वह भीतर गया, जम के मनपसंद भोजन किया। बाहर जाने लगा तो होटल के मैनेजर ने सात सौ रुपये का बिल पकड़ा दिया। वह चौंका। उसने कहा, 'आपने बाहर लिखा है कि जी भर के खाओ, भुगतान बेटे-पोतों से लिया जायेगा फिर मुझे बिल क्यों दिया जा रहा है?' होटल के मैनेजर ने कहा, 'जनाब, यह आपके खाने का बिल नहीं है। यह तो आपके बाप-दादा खाकर गये हैं उनका बिल है।' उसे लगा कि आज बुरे फंसे। जीवन-भर याद रखें, मुफ्त के मालपुए खाने की बजाय परिश्रम की रूखी-सूखी रोटी बेहतर होती है।

चिंता-तनाव : डुबाए जीवन की नाव

तनाव से बचने के लिए बेवजह की चिंताओं से भी बचें। कोई काम करना हो तो उस पर व्यक्ति सोच कर निर्णय ले ले, यह तो उचित है, लेकिन किसी भी बिंदु पर केवल सोचते रहना और निर्णय न ले पाना अपने मस्तिष्क पर जानबूझ कर बोझ डालना है। वास्तव में चिंता व्यक्ति को तब सताती है जब कोई कार्य हमारी इच्छा या अपेक्षा के अनुकूल न हो रहा हो। व्यक्ति एक ही बात को जब बार-बार अपने भीतर घोटता रहता है तो उसके परिणामस्वरूप वह तनाव में आ जाता है और कभी-कभी तो बिना किसी ठोस कारण के मात्र किसी भावी अनिष्ट की आशंका से व्यक्ति चिंता में डूब जाता है। ऐसी स्थिति में तो तनाव और भी गहरा हो जाता है जब व्यक्ति हर पहलू पर नकारात्मक दृष्टि से सोचता है। हर समय प्रसन्न रहना और छोटी-मोटी बातों की चिंता करने की बजाय उन्हें भुला देना ही तनाव-मुक्ति की अमृत औषधि है। जो कुछ और जैसा भी हमको मिला है उसी में संतुष्ट रहना अगर मनुष्य को आ जाये तो तनाव की आधी बीमारी खत्म हो सकती है। आपके पास खुशी का कोई साधन नहीं है तो भी आप मुस्कुराते हुए बच्चे को देखकर प्रसन्न हो सकते हैं। खिले हुए फूल व खेत-खलिहान को, पर्वत-नदियों व प्राकृतिक सौन्दर्य को देखकर खुश हो सकते हैं। और तो और, उगते हुए सूरज, खिला हुआ चांद और टिमटिमाते तारों को देखकर भी हम प्रसन्न हो सकते हैं।

तनाव-मुक्ति के लिए हम इस सूत्र का सहारा ले सकते हैं। कुछ अच्छी बातें होती हैं जिन्हें हम अपने जीवन में जीने का प्रयास करें। ये बातें पंगु के लिए बैसाखी का काम कर सकती हैं। औरों की निंदा, ईर्ष्या, दोषारोपण की भावना, बिना सोचे-समझे कुछ भी बोल जाना, ये सब पछतावे के कारण होते हैं और धीरे-धीरे हमें तनाव की ओर खींच लेते हैं। हम अपने ही भीतर जन्मने वाले विचारों का निरीक्षण करें। जो विचार औरों से जुड़े हुए हैं, देखें कि वे विचार ईर्ष्या और द्वेष से प्रेरित तो नहीं हैं? अगर ऐसा है तो उन्हें दरकिनार करें। आपकी भूलने की आदत है, यह अच्छी बात है। आप उसका उपयोग करें। 'प्लीज'! आप अपने जीवन की खुशियों के लिए उन बातों को भूल जायें जो बार-बार आपकी जिंदगी में तनाव के कांटे उगा रही हैं।

इस बात का बोध रखें कि हमारा मूल स्वभाव क्या है—पीड़ा या आनंद? और जब इन दो में से एक के चयन का मौका आये तो झट से आनंद को चुन लें। अपनी जेब में ऐसी मुहर रखें, जिससे सदा एक ही शब्द छपता हो और वह है खुशी। सुबह उठते ही एक मिनट तक तबीयत से मुस्कुराएं। वह एक मिनिट की मुस्कान आपके चौबीस घंटे की दैनंदिनी व्यवस्थाओं में माधुर्य घोल देगी। सुबह उठकर मुस्कुराना अपनी झोली में खुशियों को बटोरने का पहला साधन है।

('कैसे सुलझाएं तनाव की गुत्थियां' से साभार)

परमार्थ पथ

मन मस्त हुआ तब क्यों बोले

हमें आज ही इस शारीरिक जीवन का अंतिम दिन समझना चाहिए। हर क्षण दृश्य-अभाव का दृढ़तम अभ्यास ही जीवन्मुक्ति का स्वराज्य बलवान करता है, जिसमें रहकर साधक स्वराट तथा सम्राट हो जाता है। संसार से निष्काम साधक चलते-फिरते, उठते-बैठते हरक्षण दृश्य-अभाव करता है। मन दृश्य है। साधक हरक्षण मन के संकल्पों का अभाव करता रहता है। भीतर किसी से वार्ता-प्रतिक्रिया एवं राग-द्वेष न करना, सदैव आत्मभाव में स्थित रहना जीवन का परम फल है, जिसमें सारे दुखों का अंत है।

* * *

यह माया का खेल है। 'संतो आवै जाय सो माया।' मेरा अस्तित्व मुझसे न कभी अलग होता है, तो उसके मिलने की बात अपने आप असत है। जो कभी छुटता ही नहीं उसके मिलने की क्या बात। बस, मन को ठप कर अपने आप में रहना है। मन भूतकाल की बातें याद करना चाहता है और भविष्य की कल्पना गढ़ना चाहता है। जब मन संसार से पूर्ण अनासक्त हो जाता है तब उसका यह धंधा शिथिल हो जाता है और विवेकज्ञान में जाागते रहने से मन अपने भूत-भविष्य का व्यापार छोड़कर स्वरूपलीन रहता है।

* * *

कालचक्र निरंतर चल रहा है। उसमें सारे निर्मित पदार्थ तथा प्राणियों के शरीर क्षण-क्षण बदल रहे हैं तथा क्षीण हो रहे हैं। जीव को कहीं जड़दृश्य में अहंकार करने की गुंजाइश नहीं है। दृश्य-अहंकार से ही हम अनादिकाल से संसार-नगर में नाचते आ रहे हैं। अब यह धंधा बिल्कुल समाप्तकर आत्मलीन रहने का काम करना चाहिए। किसके साथ क्या है और कौन है? जीव के साथ केवल जीव है। आत्मा असंग है। उसके साथ किसी का संबंध बन ही नहीं सकता। इस अपने निरालापन को निरंतर समझते हुए आत्मनिष्ठ रहना चाहिए। सबसे निर्मोह, निर्वैर, असंग, निराला, अद्वैत केवल, शेष, बक्रा ही सच्ची साधना है। इसी में सारे दुखों का अंत है।

* * *

निर्मानी, निर्हंकारी और समझदार के लिए हर समय भजन-साधना का अवसर है; और अहंकारी के लिए हर समय उलझन है। सबसे सब समय सिर झुकाकर चलना है। दूर के, निकट के बड़े-छोटे सब मुझसे बड़े हैं, सबके प्रति आदरभाव, समताभाव, शीलभाव रखकर जीवनयापन करने वाले के लिए कहीं कोई बाधा नहीं है। सेवा करना अपना धर्म है, अपने कल्याण के लिए है। दूसरे के द्वारा अनसुहाता व्यवहार तथा बात पाकर क्षोभित न होकर सरल रहना है क्योंकि कुछ रहने वाला नहीं है। सब दृश्य हरक्षण भागता जाता है। मेरे साथ तो केवल मैं ही निरंतर रहने वाला हूं। सारा राग-द्वेष त्यागकर सब समय स्वरूपभाव में मग्न रहना अपनी साधना है।

* * *

कालचक्र बड़ा विचित्र और निरंतर गतिशील है। मनुष्य का काम पूरा नहीं होता है और उसे काल अपने पंजे में कर लेता है। विवेकवान सारी कामनाएं छोड़कर स्वरूप में स्थित होते हैं और जीवनयात्रा में सहज सेवा करते रहते हैं। उनका कोई काम शेष नहीं रहता है। वे सब कुछ को मन से त्यागकर स्वतः शेष रहते हैं।

* * *

सब कुछ क्षणिक और चंचल है। अचानक कब क्या बदलाव हो जाये यह कोई नहीं जानता। सब समय मन अंतर्मुख रहे, यही हमारा परम कर्तव्य है।

* * *

सब कुछ भूल जाने के समान कोई सुख नहीं है। गाढ़ी नींद में हम सब कुछ भूल जाते हैं और शरीर छूट जाने पर तो सब दृश्य गायब ही हो जाता है। वस्तुतः समाधि द्वारा जब सब कुछ भूल जाता है, यह सच्चा सुख है। जड़-दृश्य प्रपंच आत्मा में है ही नहीं। यह तो देह-मन की उपाधि से जड़दृश्य सामने होता है। चेतन पर जड़दृश्य व्यर्थ में लदा हुआ है। चेतन पुरुष जब दृश्य से उदास होकर उसे अपने ऊपर से उतार देता है, तब दुखरहित हो जाता है।

* * *

चित्त की शुद्धि है उसमें राग-द्वेष का सर्वथा अभाव होना और चेतन पुरुष की शुद्धि है उसका अपने आप को चित्त से सर्वथा पृथक समझना। चित्त दृश्य है, चेतन द्रष्टा है। चित्त के विलुप्त होने पर चेतन द्रष्टा भी नहीं है, अपित शुद्ध चेतन मात्र है। अहो, मेरे में न तन है न मन है, न पंच विषय है और न कोई प्रपंच है। मैं तो असंग, अखंड, दुखहीन, अविनाशी, अकेला सर्वप्रपंचशून्य हूं। मुझे न मोह है न शोक है, न दुख है। मैं तो परम शांतस्वरूप हूं।

* * *

तुम्हारे संपर्क में रहने वाले लोगों के स्वभाव विभिन्न होंगे। उनमें कोई अधिक अहंकार भाव वाला, कोई विनम्र, कोई जटिल मन का, कोई सरल चित्त का, कोई कंजूस, कोई उदार, कोई उत्तेजक, कोई सहनशील, कोई तुम्हारे साथ रहते हुए तुम्हारे पास बैठने की रुचि न रखने वाला, कोई निकट बैठने वाला। तुम्हारा काम सबसे समता का बरताव करना है। कोई तुम्हारी आलोचना कभी न करने वाला, अपितु प्रशंसा करने वाला और कोई तुम्हारी थोड़ी-सी बात लेकर ही आलोचना करने वाला। यह सब वस्तुतः कुछ नहीं है। तुम सब से अच्छा बरताव करो। कुछ रहने वाला नहीं है। तुम तुम्हारे साथ सब समय हो, शेष तुम्हारे साथ कुछ नहीं है। तुम सहनशील बनकर रहो। सब अच्छे हैं। सबसे समता लेकर चलो और शांत रहो।

* * *

सारा संसार प्रकृति की विकृति है! उसका क्षण-क्षण बनना-बिगड़ना स्वभाव है। मेरा अस्तित्व न बनता है और न बिगड़ता है, अपितु नित्य स्थिर रहता है। चाहे जितने प्रिय प्राणी हो या पदार्थ उनका छूट जाना पक्का है, परन्तु मेरा अस्तित्व मुझसे पृथक नहीं होगा।

* * *

प्रकृति पर किसी का वश नहीं है। सब कुछ क्षणिक है। स्थिर तो मेरा अस्तित्व है। मैं में मैं सदा तृप्त रहूं यही असली जीवन-फल है।

* * *

मुझ शुद्ध चेतन के अलावा जो कुछ शरीर से संसार तक जड़दृश्य पसारा है, वह सब अनात्म और अनित्य है। अतएव न कुछ देखने योग्य है, न सुनने योग्य है, न सूंघने योग्य है, न छूने योग्य है, न संवाद लेने योग्य है और न सोचने योग्य है। जब तक शरीर है, तब तक उसका व्यवहार है, इसलिए देखना-सुनना आदि पड़ता है। किन्तु समाधि में पहुंचकर देखने, सुनने, सोचने की कोई आवश्यकता नहीं। समाधि-लाभ महा लाभ है जिसमें हम स्वरूप को उपलब्ध होते हैं, फिर उसमें कूड़ा-कचड़ा रूप जड़ के स्मरण की क्या आवश्यकता है। वस्तुतः मेरा स्वरूप परम निर्मल, अज, अद्वैत, केवल, असंग, निराधार, तृप्त स्वरूप है। मन तथा देहोपाधि से द्वैत सामने होता है, अन्यथा मैं जड़दृश्य छोड़कर अद्वैत-अकेला हूं।

* * *

यह संसार मृत्युलोक कहा जाता है और संस्कृत साहित्य में मनुष्य को मर्त्य—मर जाने वाला कहा जाता है। यह बहुत थोड़े दिनों का समय मिला है। हमें सब तरह से सिमिट कर आत्मलीन होने के अभ्यास में निरंतर दृढ़ होना चाहिए। हम अनादि काल से सब कुछ किये और सब कुछ पाये, परन्तु दुख बना रहा। वस्तुतः अपने में लौटने पर हम दुखों से मुक्त होंगे। ❑

मनुष्य जीवन की सफलता किसमें है?

दुनिया के सभी सन्तों-महापुरुषों एवं गुरुजनों ने यह कहा है कि बहुत जन्मों का सौभाग्य उदित होता है तब मनुष्य जीवन की प्राप्ति होती है। हम लोगों को मनुष्य का जीवन मिला हुआ है। इस मनुष्य जीवन की विशेषता एवं सफलता किस बात में है, इस पर हमें विचार करना चाहिए।

पशु-पक्षी और मनुष्य—इनमें जो अंतर है वह स्पष्ट है। कई बातों में पशु-पक्षी मनुष्यों से ज्यादा तेज हैं। जैसे पक्षी जिस प्रकार निराधार आकाश में उड़ता है वैसे मनुष्य नहीं उड़ सकता। हाथी और ऊंट जितना बोझा ढो सकते हैं आदमी उतना बोझा नहीं ढो सकता। शेर, चीता और हिरन जितनी तेजी से दौड़ सकते हैं उतनी तेजी से आदमी नहीं दौड़ सकता। चील आकाश में बादलों से भी ऊपर चली जाती है और वहीं से देख लेती है कि जमीन पर मुरदा कहां पड़ा हुआ है, इतनी तेज दृष्टि चील की होती है। आदमी इतनी दूरी तक नहीं देख सकता। कहीं एक दाना शकर गिर गया हो तो चीटियां जहां रहती हैं वहीं से सूंघकर वहां पहुंच जाती हैं। आपको पता भी नहीं चलता कि यहां शकर का दाना गिरा हुआ है।

आदमी के अतिरिक्त जो जानवर हैं वे इन्द्रिय प्रधान होते हैं। उनमें इन्द्रियों की प्रधानता है। मनुष्य में शरीर एवं इन्द्रिय की प्रधानता नहीं है। मनुष्य में मन की प्रधानता है। आदमी का मन जितना तेज और विकसित है उतना जानवरों का मन तेज और विकसित नहीं है।

आदमी में मन का विकास है तो आदमी ने मनन किया। आदमी के पास बुद्धि है। बुद्धि से चिंतन किया और परिणाम यह हुआ कि आदमी ने दूरबीन बनाया और दूरबीन के द्वारा चील से भी ज्यादा दूरियों को देख लिया। आकाश में ऐसे-ऐसे तारे हैं जो हमारी पृथ्वी से करोड़ों किलोमीटर दूर पर हैं लेकिन आदमी दूरबीन से देख लेता है। हमारा सूरज ही पंद्रह करोड़ किलोमीटर दूर है और दूरबीन से बड़े आराम के साथ उसे देख लेते हैं। तो आदमी ने मनन किया, बुद्धि से चिंतन किया और दूरबीन बनाया। पक्षी जैसे आकाश में निराधार उड़ता है वैसे आदमी नहीं उड़ सकता। लेकिन आदमी ने मनन-चिंतन किया और हवाई जहाज बनाया। परिणाम यह हुआ कि आदमी स्वयं तो उड़ता है साथ-साथ बहुत-से लोगों को और सामानों को लेकर घण्टों-घण्टों उड़ता रहता है।

मछली के समान आदमी पानी में तैर नहीं सकता लेकिन आदमी ने मनन किया और जल जहाज बनाया। और इतना बड़ा जल जहाज बनाया कि लाखों-लाखों टन सामान लादकर समुद्र में महीनों-महीनों की यात्रा करता है। घोड़ा-हाथी के समान आदमी बोझा नहीं ढो सकता लेकिन आदमी ने मनन किया और रेलगाड़ी बनाया और एक ड्राइवर कितना सारा सामान लेकर कहां से कहां दौड़ता रहता है।

आदमी में मन की विशेषता है। आदमी अपने मन को सम्हाल ले तो भव का भूषण हो सकता है, दुनिया का शृंगार हो सकता है और यदि आदमी अपने मन को न सम्हाले तो गड्ढे में गिर सकता है। दुर्भाग्य यह है कि आदमी ने अपने मन का सदुपयोग नहीं किया, गलत ढंग से सोचा। इसलिए इस दुनिया में जितना दुखी आदमी है उतना दुखी कोई जानवर नहीं है। जितना चिंतित और तनावग्रस्त आदमी है उतना चिंतित और तनावग्रस्त कोई जानवर नहीं है। पशु-पक्षी को कोई चिंता नहीं है। उनके पास खेत-खलिहान नहीं, घर नहीं, बैंक बैलेंस नहीं लेकिन उनका जीवन बड़ा निश्चिंत है क्योंकि वे गलत सोचते नहीं हैं।

आदमी कमाता है, खाता है, बच्चे पैदा कर लेता है, उन्हें पाल-पोष लेता है। ऐसा तो जानवर भी कर लेते हैं। छोटी-सी चिड़िया अण्डा देने के पहले घोसला बना लेती है। अण्डा देने के पश्चात उसको सेती है। चार-छः दिनों में अण्डों से छोटे-छोटे बच्चे निकलते हैं। चिड़िया उनके लिए खोज-खोजकर उनके अनुकूल चारा लाकर खिलाती है और बड़ा कर लेती है।

अपने बाल-बच्चों का पालन-पोषण किस तरह से करना है इसमें तो हर जानवर कुशल है और आदमी भी इतना कर लिया तो कौन-सी बड़ी विशेषता हो गई! इतना ही नहीं चिड़िया के बच्चे बड़े हुए और उड़कर चले गये। कहां गये कुछ पता नहीं। लेकिन आदमी अपने बच्चे का पालन-पोषण किया, उसके लिए व्यवस्था किया, घर बनाया, जमीन-जायदाद खरीदा, सारी व्यवस्था किया लेकिन आदमी को चिंता है कि बेटे के बेटे का क्या होगा?

आपका बेटा है तो आपने अपने बेटे के लिए व्यवस्था कर दी। उसको लिखाया-पढ़ाया, उसका शादी-विवाह कर दिया, सारी व्यवस्था किया, अब बेटे के बेटा को उसका पिता जानेगा। लेकिन आदमी को चिंता है कि बेटे के बेटे का क्या होगा? यदि आदमी जीता रह जाये तो आगे और आने वाली पीढ़ियों के बारे में चिंता करेगा।

चिंता करना आदमी का स्वभाव बन गया है। चिंता आदमी का अपना बनाया रोग है। यह चिंता का रोग पूरी दुनिया के लोगों पर व्याप्त है। इतना ही नहीं, कितने लोगों को यह चिंता होती है कि हम नहीं रहेंगे तो हमारे बाल-बच्चों का क्या होगा? यह विश्वास रखो कि आप नहीं रहेंगे तो आपके बाल-बच्चे बड़े आराम से जिंदगी जी लेंगे। उनके भी हाथ-पैर हैं, भूख लगेगी तो काम-धाम करेंगे ही।

आदमी सबकी चिंता करेगा लेकिन अपने कल्याण का साधन क्या होगा, कल्याण कैसे होगा, इसकी चिंता नहीं करता। कितने बुजुर्ग हैं वे अनावश्यक चिंता करते रहते हैं।

बहुत पहले की बात है। एक सज्जन गुरुदेव जी से मिलने आया करते थे। समय-समय से कहा करते थे कि महाराज जी! तीन बेटे हैं। तीनों बेटों की अलग-अलग दुकान हैं और तीनों बेटों की दुकान अच्छी चलती है, खूब कमाई होती है। तीनों बेटों के अलग-अलग मकान हैं। बेटों ने मेरे लिए मकान के ऊपर एक मंदिर बनवा दिया है। मैं सुबह-शाम उस मंदिर में पूजा कर लेता हूं। मन होता है तो कभी किसी बेटे की दुकान में जाकर बैठ जाता हूं, कभी किसी बेटे की दुकान में जाकर बैठ जाता हूं। बेटे कुछ कहते नहीं हैं लेकिन मैं ऐसे ही चला जाता हूं। कोई रोक-टोक नहीं है।

शाम के समय बेटे आकर मेरे पैर भी दबाते हैं, सेवा करते हैं। मैं कहूं—बेटे! मुझे अमुक तीर्थयात्रा में जाना है, अमुक जगह दान करना है, दो हजार रुपया चाहिए तो बेटे मुझे पांच हजार रुपये दे देते हैं। लेकिन महाराज! मुझे चिंता होती है। तो गुरुदेव जी ने पूछा कि किस बात की चिंता होती है? जब सब कुछ ठीक-ठाक है, बेटे कमा रहे हैं, आज्ञाकारी हैं तो किस बात की चिंता है? उसने कहा—समझ में नहीं आता। गुरुदेव जी ने कहा—तुम्हें ऐसा लगता होगा कि मैं नहीं रहूंगा तो इन बच्चों का क्या होगा? उसने कहा—बस महाराज! यही चिंता है। गुरुदेव जी ने कहा—भोले आदमी! जब तुम्हारे तीनों बेटों की अलग-अलग दुकान हैं, वे तुम्हारे रहते-रहते खूब कमा रहे हैं तो क्या तुम्हारे नहीं रहने पर सब मिट जायेगा? अपने लिए कुछ ऐसा प्रबंध कर लो कि हजारों वर्ष तक जीते रहो ताकि अपने बेटों के लिए और कमा सको। वह आदमी हंसने लगा।

आदमी का कितना दुर्भाग्य है। नाहक आदमी चिंता करता है। चिंता न करें, काम करें। आपने अपना कर्तव्य पूरा कर दिया, अब आगे बच्चे जानें।

खास बात है आदमी में मन की प्रधानता है। जानवरों को चिंता नहीं होती। जानवर बड़े निश्चिंत होते हैं। जानवर लड़ते-झगड़ते नहीं हैं। आदमी कितना लड़ता-झगड़ता है, कितने मुकदमाबाजी करता है। इसमें आदमी कितना समय और पैसा बर्बाद कर देता है। सुख से जीना आदमी को नहीं आता है। सुख से जीने का जो साधन है वह जानता ही नहीं है। आदमी केवल अपना पेट भर रहा है। बिना खाये जीवन चलेगा नहीं। यह तो मजबूरी है। लेकिन यह जीवन का उद्देश्य नहीं है।

भोजन और भजन ये दो चीजें हैं। भोजन मजबूरी है। यह मानव जीवन हमें मिला है भजन करने के

लिए। और यही काम आदमी नहीं करता। संतों-गुरुजनों ने जो कहा है कि बड़े सौभाग्य से मनुष्य जीवन मिला है, तो सौभाग्य भजन करने में ही है। पशु-पक्षी भजन नहीं कर सकते किन्तु वे दुखी भी नहीं हैं। दुखी तो आदमी है और दुख बिना भजन के मिटेगा नहीं। किसी ने बहुत बढ़िया गाया है—

बिन भजन के जगत में तू प्राणी,
मुंह दिखाने के लायक नहीं है।

हे मनुष्य! भजन किये बिना इस दुनिया में तू मुंह दिखाने लायक नहीं है। लेकिन आदमी भजन करता कहां है। जानता भी नहीं है भजन करना।

एक होता है भजन गाना और एक होता है भजन करना। भजन गाना सबको नहीं आता है, सबका राग नहीं बनता है। किसी-किसी का राग होता है, बढ़िया भजन गाता है, उसका भजन सुनकर मन मुग्ध हो जाता है। लेकिन भजन हर आदमी कर सकता है।

सद्गुरु कबीर साहेब ने एक पद में कहा भी है—

"भजन बिना बावरे तूने हीरा जनम गमाया।"

मनुष्य जीवन की तुलना हीरा से किया जाता है। हीरा बड़ा कीमती होता है। छोटा-सा हीरा मिल जाये तो आदमी की दरिद्रता समाप्त हो जायेगी।

ऐसे हीरे के भाव में मनुष्य जीवन की तुलना की गयी है और उसे हम कौड़ी के भाव में बेच रहे हैं। इतना आदमी महान है लेकिन कितना तुच्छ हो गया है। सद्गुरु कबीर साहेब ने कहा है—

अवधू कुदरत की गति न्यारी।
रंक निवाज करे वै राजा, भूपति करे भिखारी॥

(बीजक, शब्द-23)

हे अवधूतो! आदमी के मन की लीला बड़ी विचित्र एवं विलक्षण है। आदमी के मन की माया क्या से क्या करवा दे और आदमी को कहां से कहां भटका दे कुछ पता नहीं चलता। आदमी के मन की माया गरीब पर कृपा करके राजा बना देती है और राजा को भिखारी बना देती है।

आदमी राजा है। राजा ही नहीं, राजाओं का भी राजा है, शहंशाह है। आदमी से बढ़कर और कौन होगा! महाभारत में महर्षि वेदव्यास जी ने कहा है—

गुह्यं ब्रह्म तदिदं ब्रवीमि न मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्।

(महाभारत, शान्ति पर्व, 299/20)

मैं एक गोपनीय रहस्य की बात बताता हूं कि दुनिया में मनुष्य से बढ़कर कोई भी और कुछ भी नहीं है। सबसे महान मनुष्य है। "मानव तू है सबसे महान" ऐसा महान आदमी जिसकी तुलना हीरे से की जाती है, वह आज कौड़ी के बराबर हो गया है। एक पैसे की बीड़ी, आदमी उस बीड़ी का गुलाम बन गया है। एक पैसे का तम्बाकू, आदमी तम्बाकू का गुलाम बन गया है। बीड़ी की कीमत ज्यादा हो गयी और आदमी की कीमत घट गयी।

आदमी अपनी महानता को समझता नहीं है। अपनी महानता को पहचानता तो बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू, गांजा, भांग, शराब आदि नाना दुर्व्यसनों का गुलाम क्यों बनता।

कितने लोग कहते हैं कि मैं ऐसा-वैसा आदमी नहीं हूं, मेरा खानदान ऊंचा खानदान है। मैं भूखा मर जाऊंगा लेकिन किसी के आगे हाथ नहीं पसारूंगा। भूखों मरना पसंद है लेकिन भीख मांगना पसंद नहीं है। धन्यवाद है उस आदमी को। लेकिन वही आदमी समय आने पर कहता है कि भैया! एक बीड़ी दोगे क्या? बीड़ी के लिए हाथ पसार रहा है। जिस भोजन से जीवन चलता है उसके लिए कहता है कि हाथ नहीं पसार सकता और जिस बीड़ी के बिना जीवन आराम से चल सकता है, उसके लिए कहता है कि भैया! एक बीड़ी दे दो न। यहां तक यदि बीड़ी नहीं है तो जूठी बीड़ी को पीने में भी संकोच नहीं होता।

हीरा सरीखे जीवन को आदमी कौड़ी के भाव में बेच रहा है। इस दुर्भाग्य को किसने बनाया है? आदमी ने स्वयं बनाया है। दुर्व्यसनों के शिकार न बनें। अपने जीवन को कौड़ी के भाव में न बेचें? क्यों बिक रहा है

आदमी कौड़ी के भाव में क्योंकि भजन करना नहीं जानता है, अपनी कीमत को नहीं पहचानता है।

कोई राजा होकर घूर पर दाने बीने तो उस राजा का कितना दुर्भाग्य होगा। राजा तो हजारों को खिलाता है। लेकिन वही घूर पर के एक-एक दाना को बीन-बीन कर पेट भरे तो यह तो दुर्भाग्य होगा। कहा जायेगा कि इसकी बुद्धि भ्रमित हो गयी है। आदमी यही तो कर रहा है। आदमी राजा है, सम्राट है, उससे बड़ा दुनिया में कोई नहीं है लेकिन घूर पर दाना बीन रहा है। एक-एक चीज के लिए मोहताज बन गया है क्योंकि भजन करना नहीं जानता है। साहेब कहते हैं—भजन बिना बावरे तूने हीरा जनम गंवाया। ऐ पागल मनुष्य! भजन के बिना तूने अनमोल हीरा समान जीवन को व्यर्थ खो दिया है।

कंचन को फेंककर आदमी ने कंकड़ को पकड़ लिया है। अब प्रश्न यह होता है कि भजन क्या है? जिसके बिना यह मानव जीवन कौड़ी के भाव बिक रहा है। भजन है आत्मशोधन करना, अपने आपकी परख करना। मैं कौन हूं, मेरा कर्तव्य क्या है, मुझे क्या करना चाहिए, और क्या कर रहा हूं, सही रास्ते में जीवन जा रहा है या गलत रास्ते में जा रहा है। सुख चाहते हुए भी दुख क्यों मिलता है, इन बातों पर विचार करना और विचार करने के पश्चात जो उचित जान पड़े उसके अनुसार चलना—भजन है।

एकांत में बैठें और अपने जीवन को देखें-परखें कि साल-दो साल पहले जितना मुझे क्रोध आता था क्या उतना ही क्रोध अभी भी आता है? क्रोध घटा है कि बढ़ा है? सोचें कि क्रोध क्यों आता है? उस क्रोध से मुझे क्या फायदा होता है?

क्रोध जब आता है तब आदमी की बुद्धि भ्रमित हो जाती है। नहीं कहने योग्य बातें कहता है, नहीं करने योग्य काम कर बैठता है और जब क्रोध का ज्वार उतरता है तब पश्चाताप करता है। क्रोध में दूसरों का नुकसान हो या न हो अपना नुकसान तो हो ही जाता है। हो सकता है जिस पर हमने क्रोध किया उस आदमी को दुख न हो, वह आदमी क्षमा कर दे। लेकिन हमने अपना नुकसान तो कर ही लिया।

क्रोधी आदमी पहला नुकसान अपना ही करता है। क्रोध की माचिस की तीली से तुलना की गई है। तीली पहले स्वयं जलती है, फिर दूसरों को जलाती है। ऐसे ही क्रोधी आदमी पहले स्वयं जलता है और बाद में दूसरों को जलाता है।

यह विचार करें कि पहले जितना क्रोध आता था अभी भी क्या उतना ही क्रोध आता है? क्रोध घटा कि बढ़ गया। बढ़ गया तो घाटा हो गया और क्रोध कम हो गया तो समझें भजन हो रहा है। लोभ घट गया तो समझें भजन हो रहा है। एकांत में बैठकर अपने मन को देखें कि काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग, द्वेष—ये जो दोष हैं, जो दुर्गुण हैं ये घट रहे हैं या नहीं घट रहे हैं। दुर्गुणों का घटना, सद्गुणों का बढ़ना—यही भजन है। इसके लिए आदमी समय नहीं निकालता है, अपने आपका शोधन नहीं करता है। आत्मशोधन न करने से ही तो जीवन में दुख बना हुआ है।

एकाएक कोई आदमी पूरा का पूरा अपने को सुधार नहीं सकता। धीरे-धीरे चलना पड़ेगा। एक-एक कदम रखते-रखते मीलों की दूरी तय हो जाती है। एक-एक ईंट रखते-रखते बड़े-बड़े मकान बन जाते हैं।

ऐसे ही अपने जीवन में जब लगे कि अमुक दोष हैं तो उन दोषों पर विचार करें और उन्हें दूर करें। यही दोष जब दूसरे आदमी में होते हैं तो मुझे बुरा लगता है, अच्छा नहीं लगता। उसके लिए मैं उनकी निंदा-आलोचना करता हूं और मुझमें वही दोष हैं तो यह ठीक नहीं है। मैं तो सत्संगी हूं, पुजारी हूं, भक्त हूं और मुझमें यह दोष बना रहे यह ठीक नहीं है। इस प्रकार एकांत में बैठकर अपने आपको शोधें, अपने आपको देखें और देख-देखकर अपने दोषों पर ग्लानि करें और उन्हें कम करें।

आत्मशोधन करना ही वास्तविक भजन करना है। और कोई भी आदमी ऐसा कर सकता है। सुबह उठकर एक संकल्प करें कि आज दिन भर मैं क्रोध नहीं

करूंगा, आज किसी को गाली नहीं दूंगा, आज झूठ नहीं बोलूंगा, आज किसी को धोखा नहीं दूंगा, आज लोभ नहीं करूंगा, कोई मुझे मार भी दे तो भी मैं बदला नहीं लूंगा और बिस्तर छोड़कर लोगों के साथ ऐसा व्यवहार करें।

आप देखेंगे कि जब क्रोध का अवसर आयेगा, बदला लेने का अवसर आयेगा तब मन में एक ब्रेक लगेगा कि आज तो मैंने संकल्प किया है। फिर रोज-रोज ऐसा संकल्प करते जायेंगे तो जीवन बहुत बढ़िया बन जायेगा।

रात्रि में जब सोने चलें उसके पूर्व बिस्तर पर बैठकर सोचें कि आज दिनभर में मुझे कब-कब और किस-किस पर क्रोध आया, कितना क्रोध आया, पहले से कम आया या ज्यादा आया, दिन भर में मैं कितना झूठ बोला, दिनभर में मेरी जबान से कितनी गालियां निकलीं, कितना मैंने लोभ किया। अपने बीते हुए समय पर दृष्टिपात करें और जहां-जहां भूल हुई है उसके लिए ग्लानि करें और संकल्प करें कि कल यह गलती नहीं होगी। धीरे-धीरे जीवन इतना बढ़िया, इतना सुंदर बन जायेगा कि देवस्वरूप बन जायेंगे। स्वयं सज्जन और महात्मा बन जायेंगे।

लोभ का, क्रोध का अवसर आया फिर भी अपने आप को सम्हाल ले, अपने आप को बचा ले यही आदमी की वीरता है। अकेले में तो हर आदमी देवता और भगवान है। प्रतिकूलता का अवसर आये, फिसलने का अवसर आये उस समय अपने आप को सम्हाल ले यह वीरता है।

मंच पर बैठकर ज्ञान की बातें कह-सुन लेना सरल है किन्तु मंच से उतरकर किसी की कुछ उलटी बातें सुनकर क्रोध से भभक पड़े तो यह ज्ञान किस काम का? अभी कह रहे हैं कि लोभ न करें और दो पैसे के लिए झूठ बोल गये, दो पैसे के लिए ईमान डगमगा गया, दो पैसे के लिए दूसरों को धोखा दे दिये तो यह ज्ञान, यह संकल्प काम नहीं आयेगा।

एक दर्जी था। उसकी बड़ी प्रसिद्धि थी। बहुत बढ़िया सिलाई करने के लिए उसकी दूर-दूर तक प्रशंसा होती थी। दूर-दूर से लोग उसके पास कपड़ा सिलवाने के लिए आते थे। लेकिन उस दर्जी में एक गलत आदत थी। कोई कैसा भी कपड़ा लाये उसमें से वह कपड़ा चुराकर रख लेता था। ऐसा करते-करते बहुत दिन बीत गये। एक दिन दर्जी रात में सोया हुआ था तो स्वप्न देखता है कि मैं मर गया हूं, लोग मुझे श्मशान में ले जाकर दफना दिये हैं। दफनाने के पश्चात लोग घर लौट आये हैं। फिर दो फरिश्ते आये हैं और मुझे जगाये हैं। मैंने देखा कि चारों तरफ रंग-बिरंगी हजारों झण्डियां लगी हैं। मैंने फरिश्तों से पूछा कि किस बात के लिए इतनी झण्डियां लगी हुई हैं? फरिश्तों ने कहा—मूर्ख! ये जितनी झण्डियां लगी हुई हैं तुम्हें दिखाने के लिए लगी हुई हैं कि तूने इतने कपड़े चुराये हैं और इसका फल तुम्हें भोगना पड़ेगा।

दर्जी कांप गया। उसने सोचा कि इतने कपड़े मैंने चुराये हैं। यदि इसका फल भोगना पड़े तो हजारों जन्म लग जायेंगे। इतने पाप का फल मैं कैसे भोगूंगा? वह कांप गया, भयभीत हो गया। जब स्वप्न में आदमी भयभीत होता है तो स्वप्न टूट जाता है। उसका स्वप्न भी टूट गया। दर्जी ने देखा कि अरे! मैं तो अपने घर में सोया हूं। यहां तो एक भी झण्डी नहीं है, लेकिन स्वप्न की याद आयी। उसने सोचा कि मैं कपड़ा चुराता था, ठीक नहीं करता था। अब आज से कपड़ा नहीं चुराऊंगा।

समय हुआ नहाये-धोये और खा-पीकर दुकान में गये। उस दर्जी के पास कई कारीगर काम करते थे। दर्जी ने उन लोगों से कहा—देखो भाई! तुम लोग मेरे साथी हो। तुम लोग जानते हो कि कपड़ा चुराने की मेरी आदत है। यदि तुम लोग देखोगे कि मैं कपड़ा चुरा रहा हूं तो तुम लोग कह देना कि उस्ताद जी झण्डी। उन लोगों ने कहा—इसका मतलब क्या होता है? उसने कहा—मतलब पूछो मत। बस तुम लोग इतना कहना उस्ताद जी झण्डी। उन लोगों ने कहा—ठीक है कह देंगे।

दर्जी ने कपड़ा चुराना बंद कर दिया। कभी-कभी मन डांवाडोल हो जाये तो उन लोगों के संकेत करने पर

वह सावधान हो जाता था और चुराता नहीं था। छह महीने बीत गये। छह महीने के बाद उस दर्जी के पास एक बढ़िया विदेशी कपड़ा आया। वैसा कपड़ा जीवन में कभी नहीं आया था। उस कपड़े को देखकर दर्जी का मन डोल गया। अपने साथियों की तरफ पीठ किया और उस कपड़े की कटिंग करते समय कपड़ा चुराने लगा। उसके साथियों ने देख लिया। उन लोगों ने कहा—उस्ताद जी! झण्डी।

उस्ताद क्यों सुनें? उसके मन में तो लोभ आ गया था। सुना ही नहीं। थोड़ी देर में साथियों ने फिर कहा—उस्ताद जी! झण्डी। फिर नहीं सुना, थोड़ी देर में फिर उसके साथियों ने कहा—उस्ताद जी! झण्डी। वह दर्जी झल्ला गया और कहा—अरे, क्या झण्डी-झण्डी कहते हो! जहां हजारों झण्डियां लगी थीं वहां एक और लग जायेगी।

आदमी के मन में जब लोभ आता है तो आदमी बहक जाता है। बहके न, उसी समय वीरता है। किसी ने कुछ कह दिया, गाली दे दिया, नुकसान कर दिया और क्रोध आया, उस समय अपने आपको सम्हाले। बाकी समय तो हर आदमी शांत है। हर आदमी देवता बना हुआ है।

अपने जीवन को देखना है कि मेरे जीवन में कौन-कौन-सी बुराइयां हैं, कौन-कौन-से दोष हैं, कौन-कौन-सी गलतियां हैं। उन पर विचार करे और विचार करके उन गलतियों को दूर करने के लिए आत्मशोधन करे। यह आत्मशोधन करना, अपने जीवन को मांजना ही भजन है और जब तक यह भजन नहीं करेंगे तब तक कल्याण नहीं हो सकता।

पाठ कर लेना, पूजा कर लेना, रामायण गा लेना आदि बड़ा सरल है। असली भजन को लोग नहीं जानते। असली भजन है—"मन की तरंग मार लो, बस हो गया भजन। आदत बुरी सुधार लो, बस हो गया भजन।"

दुख कहां से मिलता है? दुख कहीं बाहर से नहीं आता है। कोई दूसरा दुख नहीं देता है। दुख आता है गलत आदतों से, गलत कर्मों से। जिन्होंने अपनी गलत आदतों पर विजय प्राप्त कर ली, कुकर्मों का त्याग कर दिया, अपने आपको मांज लिया उनके जीवन से दुख दूर हो जाता है।

किसी भी उम्र का आदमी इसके लिए सक्षम है। भजन करने लिए, आत्मशोधन के लिए, अपने आपको मांजने के लिए बहुत रुपये-पैसे, बहुत पढ़ाई-लिखाई की जरूरत नहीं है। ज्यादा रुपये-पैसे नहीं हैं तो आप दान नहीं कर सकते, सेवा नहीं कर सकते। विद्या नहीं है तो आप दूसरों को पढ़ा नहीं सकते। लेकिन धन हो या न हो, पढ़े-लिखे हों या न हों भजन तो कर ही सकते हैं। भजन है अपने जीवन को देखना, अपने मन को देखना। और इसे कोई भी और कहीं भी कर सकता है।

कहा जाता है कि वेदव्यास जी से किसी ने पूछा कि मैं ईश्वर का भजन, ईश्वर की पूजा करना चाहता हूं, कैसे करूं? ईश्वर की पूजा क्या है? तो वेदव्यास जी सोच में पड़ गये कि ऐसा क्या उत्तर दूं जो सबके लिए हो। फिर सोचकर उन्होंने कहा—

रागाद्येतंहृदयं वागदुष्टानृतादिभिः।
हिंसादिरहितः कायश्चैतद् ईश्वरपूजनम्॥

हृदय से राग-द्वेष, क्रोध, छल-कपट दूर हो जायें; वाणी से गाली, निंदा, झूठ और कटुवचन दूर हो जायें, और चोरी-हिंसा आदि से शरीर रहित हो जाये—यही ईश्वर की पूजा है। अर्थ है कि मन, वाणी और कर्मों की निर्मलता, जीवन की पवित्रता—यह ईश्वर की पूजा है।

एक मुसलमान कहेगा कि हम राम-राम कभी नहीं कहेंगे, हम तो अल्लाहो अकबर कहेंगे। एक हिन्दू कहेगा कि हम अल्लाहो अकबर कभी नहीं कह सकते, हम तो ॐ कहेंगे, राम कहेंगे, कृष्ण कहेंगे, शिव कहेंगे। ईसाई कहेगा कि न तो मैं अल्लाहो अकबर कहूंगा और न ही राम, शिव और ॐ कहूंगा। मैं तो ईसा का नाम जपूंगा। सब अपना-अपना जपेंगे लेकिन क्या कोई यह कहेगा कि मन, वाणी और कर्मों को निर्मल बनाना,

जीवन को पवित्र बनाना यह तो हिन्दुओं का काम है। हम तो मुसलमान हैं हमें इसकी आवश्यकता नहीं है। या कोई हिन्दू कहेगा कि जीवन को निर्मल बनाना, मन-वाणी-कर्म को निर्मल बनाना, यह तो मुसलमानों का काम है।

मन, वाणी और कर्मों की निर्मलता मनुष्य मात्र के लिए, साधु के लिए, गृहस्थ के लिए सबके लिए आवश्यक है। स्त्री-पुरुष, हिन्दू-मुसलमान आदि सबके लिए आवश्यक है जीवन को शोधना, जीवन को निर्मल बनाना और यही भजन है।

इस भजन के बिना आदमी का दुख दूर नहीं हो सकता। कितना धन बढ़ जाये, विद्या बढ़ जाये, पद बढ़ जाये, परिवार बढ़ जाये, कुछ भी आप बन जायें, दुख दूर नहीं होगा, जीवन में महानता नहीं आयेगी, जीवन में असली बड़ाई नहीं आयेगी।

जीवन की बड़ाई है जीवन की निर्मलता में। धन है तो अच्छी बात है सदुपयोग करें, विद्या है तो उसका सदुपयोग करें। नेता बन गये, पद मिल गया तो उसका सदुपयोग करें। लेकिन धन से, विद्या से, पद से सम्मान मिल सकता है, आदर मिल सकता है। जीवन में शांति नहीं आयेगी, जीवन में उच्चता नहीं आयेगी।

जरा कल्पना करें, कहीं कोई सभा-गोष्ठी चल रही हो और वहां उस क्षेत्र-प्रदेश का सबसे अधिक धनवान व्यक्ति आ जाये तो लोग उठकर उसका स्वागत-सत्कार करेंगे और आदरपूर्वक मंच पर बैठायेंगे। कोई बड़ा विद्वान व्यक्ति या युनिवर्सिटी का वाइस चांसलर आ जाये तो उसका भी आदर-सत्कार करेंगे और यदि कोई नेता, विधायक, सांसद या मंत्री आ जाये तो उसका स्वागत-सत्कार करेंगे। धन के कारण, विद्या के कारण, और पद के कारण आदर-सत्कार करेंगे, किन्तु क्या लोग उसके पैर धोकर पूजा करेंगे, आरती-वंदना करेंगे? कभी नहीं करेंगे।

पूजा किसकी करेंगे? साधु की पूजा करेंगे। भले ही वह मैले-कुचैले कपड़े पहने हों। फिर धन की, विद्या की, पद की विशेषता हुई या जीवन आचरण की विशेषता हुई! जीवन आचरण की, त्याग की, निर्मलता की विशेषता होती है और इतना ही नहीं कोई फकीर-साधु आ जाये तो धनवान, विद्वान और पदवान भी उसके पैर छुयेगा। उसकी भक्ति करेगा। कहेंगे—महाराज! आपके दर्शन से हमारा जीवन कृतार्थ हो गया। अतः विशेषता चरित्र की, जीवन निर्मलता की है।

जीवन में धन की जरूरत है, विद्या की तथा पद की भी जरूरत है लेकिन इससे जीवन में शांति नहीं आयेगी, जीवन में आनंद नहीं आयेगा, सुख नहीं मिलेगा। आनंद-सुख कब मिलेगा जब जीवन पवित्र होगा, दोष-विकार दूर होंगे, गंदगी दूर होगी। जब जीवन निर्मल हो जायेगा तब शांति मिलेगी और उसके लिए बाहरी ऐश्वर्य की आवश्यकता नहीं है। अपने जीवन से दोषों को दूर करना यही वास्तविक भजन है। और इस भजन के बिना आदमी का यह हीरा सरीखा जीवन कौड़ी के भाव में बिक रहा है। इसी भजन के बिना आदमी दुनिया में सर्वाधिक दुखी बना हुआ है। इसी भजन के बिना आदमी चिंता और तनाव में पड़ा हुआ है।

जिस आदमी को सबसे अधिक सुखी होना चाहिए था वही आदमी सबसे ज्यादा दुखी हो गया है। क्योंकि उसने अपने मन को सम्हाला नहीं।

मनुष्य जीवन में मन की विशेषता है। मन के कारण से मनुष्य, मनुष्य कहलाता है। "मननात् मनुष्यः" मनन करने के कारण इस प्राणी को मनुष्य कहते हैं, लेकिन आदमी ने सही ढंग से मनन नहीं किया। वह गलत ढंग से सोचा। जो नहीं सोचना चाहिए वह सोचा, इसके परिणाम में जीवन गलत रास्ते में चला गया। करना था भजन, करने लग गया राग-द्वेष का काम। करना चाहिए था सेवा, भक्ति, परोपकार का काम और करने लग गया लूटपाट का काम तो कहां से सुखी होगा। जीवन में ऊंचाई कैसे आयेगी!

ठीक से मनन करें और ठीक से मनन करने का अर्थ है भजन करना और भजन करना है आत्मशोधन करना। पहले मुझमें कितना दोष था, अब वह दोष कितना रह गया? पहले मैं कितना झुंझलाता था, कितना

कलह करता था, बात-बात में लोगों को डांटता था, ये दोष कितने कम हुए, कितनी कटुता दूर हुई और सरलता आयी, कितना अहंकार दूर हुआ और विनम्रता आयी, कितनी हिंसा की भावना दूर होकर मन में दया-करुणा का भाव आया। नहीं आया तो कहां कमी हो रही है? अपने आपको निरखें-परखें, थोड़ा समय निकालें।

दुर्भाग्य से आदमी सबके लिए समय निकालेगा लेकिन अपने लिए समय नहीं निकालेगा। सबके लिए समय है आदमी के पास किन्तु जीवन-शोधन के लिए समय नहीं है। ऐसा अनमोल जीवन बीत जाता है और आदमी अशांति में पड़कर हाय-हाय करते हुए दुनिया से विदा हो जाता है। हाय-हाय करते हुए दुनिया से विदा होना—यही जिंदगी की हार है।

हमने सही काम नहीं किया, आत्मशोधन नहीं किया। अब आत्मशोधन करें और शोधकर अपनी बुराइयों को दूर करें और सद्गुणों को बढ़ायें। यही असली भजन होगा और इस भजन से ही जीवन की सफलता होगी। इसी के लिए मनुष्य जीवन मिला हुआ है। दुनिया के सभी संत एक स्वर से कहते हैं कि बड़े भाग्य से मनुष्य का तन मिलता है। क्यों मिलता है? केवल भजन करने के लिए।

हमारा अपना जीवन हमारे साथ है। इसे जितना शोधेंगे उतना ही भीतर से शांति आयेगी, उतना ही जीवन कृतार्थ होगा। और इसी में जीवन की सफलता होगी। इसी के लिए कहा गया है—"बड़े भाग्य मानुष तन पावा" अन्यथा मानव जीवन की कोई विशेषता नहीं है। बड़े भाग्य मानुष तन पावा क्यों कहा? क्योंकि आदमी भजन कर सकता है, कल्याण का काम कर सकता है। वही काम बस रह जाता है बाकी सब काम होता है। इसलिए जीवन की हार होती है। धर्म, भक्ति, अध्यात्म का पथ आत्मशोधन के लिए है। यही असली भजन होगा और इसी से जीवन में शांति आयेगी और इसी से जीवन में सफलता होगी।

—धर्मेन्द्र दास

सकारात्मक सोच का महत्त्व

एक व्यक्ति ऑटो से रेलवे स्टेशन जा रहा था। ऑटो वाला बड़े आराम से ऑटो चला रहा था। एक कार अचानक ही पार्किंग से निकलकर रोड पर आ गई। ऑटो ड्राइवर ने तेजी से ब्रेक लगाया और कार, ऑटो से टकराते-टकराते बची।

कार चला रहा आदमी गुस्से में ऑटो वाले को ही भला-बुरा कहने लगा जबकि गलती उसकी थी। ऑटो चालक एक सत्संगी (सकारात्मक विचार सुनने-सुनाने वाला) था। उसने कार वाले की बातों पर गुस्सा नहीं किया और क्षमा मांगते हुए आगे बढ़ गया।

ऑटो में बैठे व्यक्ति को कार वाले की हरकत पर गुस्सा आ रहा था। उसने ऑटो वाले से पूछा—तुमने उस कार वाले को बिना कुछ कहे ऐसे ही क्यों जाने दिया। उसने तुम्हें भला-बुरा कहा, जबकि गलती तो उसकी थी। हमारी किस्मत अच्छी है, नहीं तो उसकी वजह से हम अभी अस्पताल में होते।

ऑटो वाले ने बहुत मार्मिक जवाब दिया—'साहब, बहुत-से लोग गार्बेज ट्रक (कूड़े का ट्रक) की तरह होते हैं। वे बहुत सारा कूड़ा अपने दिमाग में भरे हुए चलते हैं।

जिन चीजों की जीवन में कोई ज़रूरत नहीं होती उनको मेहनत करके जोड़ते रहते हैं, जैसे क्रोध, घृणा, चिंता, निराशा आदि। जब उनके दिमाग में इनका कूड़ा बहुत अधिक हो जाता है, तो वे अपना बोझ हलका करने के लिए इसे दूसरों पर फेंकने का मौका ढूंढ़ने लगते हैं।

इसलिए मैं ऐसे लोगों से दूरी बनाए रखता हूं और उन्हें दूर से ही मुस्कराकर अलविदा कह देता हूं। क्योंकि अगर उन जैसे लोगों द्वारा गिराया हुआ कूड़ा मैंने स्वीकार कर लिया, तो मैं भी कूड़े का ट्रक बन जाऊंगा और अपने साथ-साथ आसपास के लोगों पर भी वह कूड़ा गिराता रहूंगा।

मैं सोचता हूं जिंदगी बहुत खूबसूरत है इसलिए जो हमसे अच्छा व्यवहार करते हैं उन्हें धन्यवाद कहो और जो हमसे अच्छा व्यवहार नहीं करते उन्हें मुस्कुराकर भुला दो।

हमें यह याद रखना चाहिए कि सभी मानसिक रोगी केवल अस्पताल में ही नहीं रहते हैं, कुछ हमारे आसपास खुले में भी घूमते रहते हैं।

प्रकृति का नियम है—यदि खेत में बीज न डाले जायें, तो कुदरत उसे घास-फूस से भर देती है।

उसी तरह से यदि दिमाग में सकारात्मक विचार न भरे जायें तो नकारात्मक विचार अपनी जगह बना ही लेते हैं।

(सोशल मीडिया)

बीजक चिंतन

तृतीय प्रकरण : ज्ञान चौंतीसा

ऊर्ध्वरिता बनो

ध

धधा अर्ध माहिं अँधियारी।
अर्ध छोड़ि ऊर्ध मन तारी॥
अर्ध छोड़ि ऊर्ध मन लावै।
आपा मेटि के प्रेम बढ़ावै॥19॥

शब्दार्थ—अर्ध=आधा, निचला, अधोमुख। ऊर्ध=ऊर्ध्व, ऊपर, ऊंचा, ऊर्ध्वमुख। तारी=ध्यान। आपा=अहंकार।

भावार्थ—ध अक्षर के माध्यम से सद्गुरु उपदेश करते हैं कि मन की अधोमुख वृत्ति में विषय-वासनाओं की अंधियारी है। अतएव साधक को चाहिए कि वह मन की अधोमुखी गति छोड़कर उसे ऊर्ध्वगामी बनाये और ध्यान में लीन करे। सद्गुरु पुनः दोहराते हैं कि मन को नीची गति से हटाकर ऊंचे ले जावे और देहादिक अहंकार मिटाकर स्वरूपज्ञान और समाधि में प्रेम बढ़ावे॥ 19 ॥

व्याख्या—मन की दो गतियां होती हैं, निम्नगामी और ऊर्ध्वगामी। मन का इन्द्रियों के विषयों की तरफ बहना निम्नगामी गति है; और विषयों से हटकर स्वरूपज्ञान, स्वरूपचिंतन, आत्मचिंतन, ध्यान, समाधि में पहुंचना ऊर्ध्वगामी गति है। सद्गुरु कहते हैं कि अर्ध में अंधियारी है। अर्थात विषय-वासना अंधकारपूर्ण है। इसलिए मन को विषय-चिंतन से हटाकर आत्मचिंतन में लगाना चाहिए।

हम यदि शारीरिक दृष्टि से भी देखें, तो शरीर में कमर से लेकर नीचे अर्धभाग है, और उसके ऊपर ऊर्ध्वभाग है। कमर से नीचे अंधकारपूर्ण विषयस्थल है और ऊपर ज्ञान की इन्द्रियां हैं। नाभि, हृदय, कंठ, ब्रह्मांड उत्तरोत्तर ज्ञानमार्ग-गामी दिशा है। ब्रह्मांड में ही सभी मुख्य ज्ञान इन्द्रियां हैं—आंख, नाक, कान, जीभ तथा ज्ञान-भंडार मस्तिष्क। जब मन अर्धभाग में उतरता है तब अंधकारपूर्ण विषयों में डूबता है और जब ऊर्ध्वगामी होता है, तब ज्ञान-प्रकाश से आलोकित हो जाता है। विषय-सेवन अधरिता होना है तथा ब्रह्मचर्य-पालन ऊर्ध्वरिता होना है।

सद्गुरु कबीर यहां मुख्य दो बातें कहते हैं। वे पहली बात यह बताते हैं कि मन की निचली गति में, विषयों की तरफ जाने में व्यक्ति का अंधकार में प्रवेश होना है; और ऊपर उठने में, आत्मचिंतन एवं ध्यान में लगने में प्रकाशपुंज में पहुंचना है। इसलिए वे दूसरी बात यह कहते हैं कि तुम मन को नीची गति से हटाकर उसे आत्मचिंतन, ध्यान, समाधि आदि की तरफ ले जाओ; और देहाभिमान को नष्टकर स्वरूपस्थिति में प्रेम बढ़ाओ।

साधक की सबसे बड़ी कमजोरी है विषय-चिंतन। विषय-चिंतन साधक की आत्महत्या है, उसका घोर अन्धकार में प्रवेश करना है। जो साधक निरंतर विषय-चिंतन करने लगता है, वह गिर जाता है। जो स्थूल विषय में नहीं गिरता है, वह अधकचरा बना भीतर-भीतर सड़ता रहता है। इसलिए विषय-चिंतन का त्याग अत्यन्त आवश्यक है।

साधक को चाहिए कि वह अपने मन को किसी-न-किसी शुभ काम में लगाये रखे, तो स्वाभाविक उसे विषय-चिंतन नहीं होगा। कहावत है—'खाली दिमाग शैतान का घर'। अतएव सेवा, सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय, सत्संग-निर्णय, ध्यान, समाधि-अभ्यास आदि में साधक को लगे रहना चाहिए।

"आपा मेटि के प्रेम बढ़ावै" बड़ा महत्त्वपूर्ण वाक्यांश है। आपा कहते हैं अपने स्वरूप को, सत्ता को; किन्तु इसका दूसरा अर्थ है अहंकार। यहां पर दूसरा अर्थ ही प्रयुक्त है। देहाभिमान नष्ट हुए बिना स्वरूपज्ञान, स्वरूपस्थिति, ध्यान, समाधि में प्रेम नहीं बढ़ सकता। अतः सद्गुरु कहते हैं कि देह तथा देह सम्बन्धी समस्त नाम-रूपों का अहंकार छोड़कर अपने शुद्ध चेतनस्वरूप में एवं ध्यान-समाधि द्वारा उसकी स्थिति प्राप्त करने में प्रेम बढ़ाओ।

देव के पशु मत बनो

न

चौथे वो ना महँ जाई।
राम का गद्धा होय खर खाई॥ 20॥

शब्दार्थ—ना=न अक्षर, अहंकार। राम का गद्धा= ईश्वर का पशु, राम की गलत व्याख्या करने वाला।

भावार्थ—न अक्षर के माध्यम से सद्गुरु उपदेश करते हैं कि जब मनुष्य सकारात्मक अपने चेतनस्वरूप एवं आत्मदेव को भूलकर, नकारात्मक मन की अवधारणाओं को ही ईश्वर मानकर उसका अहंकार करता है, तब वह ईश्वर का पशु बनकर घास चरता है। अर्थात अपनी मूढ़ता का प्रदर्शन करता है ॥ 20॥

व्याख्या—"चौथे वो ना महँ जाई" के दो ढंग से अर्थ किये जा सकते हैं। एक ढंग है कि त-वर्ग का चौथा वर्ण 'ध' है, और इस चौथे के बाद जब मनुष्य 'न' में जाता है, तब मानो वह निषेध में एवं शून्य में जाता है। जिस संसार में अपना एक तृण तथा एक कण भी नहीं है, वहां का अहंकार करना अज्ञान के सिवा कुछ नहीं है। इसी प्रकार अपने स्वरूप के अलावा जहां तक जो कुछ देव-गोसैयां मान रखा है, सब मन की कल्पना के अलावा कुछ नहीं है। अतएव इन कल्पित अवधारणाओं में अहंकार करना अल्पज्ञता एवं भ्रम है। अतएव अपने स्वरूप से भिन्न कुछ भी अपना लक्ष्य मानना ईश्वर का गधा बनकर घास चरना है।

दूसरा तरीका है, चतुष्टय अंतःकरण में मन, चित्त, बुद्धि के बाद चौथा अहंकार है। हम अपने चेतनस्वरूप के अलावा जहां भी अहंता-ममता करते हैं वह सब कुछ नकारात्मक है। उसमें कुछ भी मेरा नहीं है। अर्थ करने के ये दो तरीके हैं, किन्तु मूल अर्थ में कोई अन्तर नहीं है। दोनों तरीकों में 'न' का अर्थ नकारात्मक, निषेधात्मक एवं निगेटिव है।

सद्गुरु कहना चाहते हैं कि आदमी अज्ञानवश नकारात्मक स्थिति में पहुंचता है। व्यक्ति का अपना चेतनस्वरूप एवं अपनी आत्मा तो सकारात्मक है; परन्तु अपने आप से पृथक देवी-देवता, ईश्वर-ब्रह्म जो कुछ माना जाता है, वह सब केवल मन की अवधारणा, मन की कल्पना होने से नकारात्मक ही है। ऐसी कल्पित तथा नकारात्मक वस्तुओं का अंहकार करना ईश्वर का गधा होकर घास चरना ही तो है!

"राम का गद्धा होय खर खाई।" बड़ा मार्मिक वचन है। यह जीव, यह चेतन, यह आत्मा ही परम देव है, राम है, ईश्वर है, ब्रह्म है, खुदा है, गॉड है। इस प्रकार जो चेतन देव, आत्म देव को न समझकर अपने से पृथक देव, राम, ईश्वर या ब्रह्म मानता है और उसके अहंकार में मतवाला रहता है, वह ईश्वर का पशु है। वह ईश्वर-ज्ञान के नाम पर लादी लादे एवं बोझा उठाये तो घूमता है, परन्तु ईश्वर-ज्ञान के नाम पर घास चर रहा है। 'घास चरना' मार्मिक मुहावरा है। इसका अर्थ ज्ञान का थोथापन है। कोई विद्यार्थी जब बहुत मेहनत के बाद भी अपना पाठ या विषय शुद्ध रूप से अपने अध्यापक को नहीं सुना पाता, तब अध्यापक कहता है 'क्या तुम घास चरते थे?' बड़े-बड़े तप तथा शास्त्र-अध्ययन के बाद भी जब धार्मिक लोग ईश्वर को अपने से बाहर खोजते हैं, तब यथार्थवादी कबीर साहेब कह बैठते हैं कि ये ईश्वर के गधे हैं। ये ईश्वर-ज्ञान के नाम पर आज तक घास चर रहे हैं। क्योंकि ये सकारात्मक स्व-स्वरूप आत्मदेव को छोड़कर उसे नकारात्मक कल्पनाओं में खोज रहे हैं। श्रुति के ऋषि भी कहते हैं—"जो समझता है कि मैं अलग हूं और देव अलग है वह देवों का पशु है।"[1] तुलसीदास जी भी कहते हैं—

ज्यों बरदा बनिजार के, फिरे घनेरे देश।
खांड भरे भुस खाइहैं, बिन गुरु के उपदेश॥
कहत सकल घट राममय, तो खोजत केहि काज।
तुलसी कह यह कुमति सुनि, उर आवत अति लाज॥

(तुलसी सतसई)

"राम का गद्धा होय खर खाई" का अर्थ बहुत व्यापक है। यह केवल हिन्दुओं के राम का अभिप्राय नहीं है। अभिप्राय है सत्य। जो सत्य को अपनी आत्मा से अलग खोजता है, वह सत्य के ज्ञान के सम्बन्ध में केवल बोझा ढोता है और घास चरता है।

---

1. योऽन्यां देवतामुपास्तेऽन्योऽसावन्योऽहमस्मीति न स वेद यथा पशुरेवं स देवानाम्। (बृह. उ. 1/4/10)
जो यह मानकर कि देवता अन्य है और मैं अन्य हूं, अन्य देवता की उपासना करता है, वह देवताओं का पशु है।

हर मत वाले धर्म-धर्म बहुत चिल्लाते हैं; किन्तु यदि वे धर्म के नाम पर भेदभाव, सांप्रदायिकता, हिंसा, घृणा आदि का व्यवहार करते हैं, तो वे धर्म को क्या खाक समझते हैं! वे तो धर्म के गधे हैं। वे धर्म के नाम का बोझा लादकर घूमते हैं। वे धर्म के नाम पर आज तक केवल घास चरते आये हैं। धर्म है सबके साथ करुणा और प्रेम का व्यवहार। इसे न करके जो उलटे हिंसा का व्यवहार करता है, वह धर्म का दुरुपयोग करता है।

धर्म के नाम पर हिंसा मत करो

प

पपा पाप करें सब कोई।
पाप के करे धर्म नहिं होई॥
पपा कहै सुनहु रे भाई।
हमरे से इन किछुवो न पाई॥ 21॥

शब्दार्थ—हमरे से=अहंकार से।

भावार्थ—प अक्षर के माध्यम से सद्गुरु उपदेश करते हैं कि धर्म के नाम पर लोग जीववध करके पाप ही करते हैं; और जीवहिंसारूपी पाप करने से धर्म नहीं होता। प अक्षर कहता है कि हे भाई! सुनो, संप्रदायों के अंहकारी एवं मताग्रही होने से ये लोग कुछ भी नहीं पा सकते॥ 21॥

व्याख्या—देवी-देवता के नाम पर बलि कहकर तथा अल्लाह के नाम पर कुर्बानी कहकर आज भी हिन्दू और मुसलमान जीवहत्या करते हैं। आये दिन धर्म के नाम पर सांप्रदायिकतावश मनुष्यों की हत्या भी करते हैं। आज से पांच सौ वर्ष पूर्व तो इन सब बातों का बोलबाला ही था। सद्गुरु कहते हैं कि जहां जीवहत्या है वहां धर्म कहां है! अल्लाह तब खुश होता है जब उसके नाम पर बकरे, मुरगे, भेड़ें, ऊंट, गाय, बैल काटे जायें। इधर हिन्दू के देवता तब खुश होते हैं जब भेड़ें, बकरे एवं भैंसे काटे जायें। यह ईश्वर और देवता के सम्बन्ध में कैसी जंगली समझ है! क्या आज का पढ़ा-लिखा आदमी जंगलीपन को छोड़ पाया है! क्या ईश्वर एवं देवी-देवताओं के नाम पर निरीह, मूक पशु-पक्षियों का वधकर इनसान अपनी शैतानियत का परिचय नहीं दे रहा है! निरपराध प्राणियों की हत्याकर अपना कल्याण सोचना क्या पागलपन नहीं है!

सद्गुरु कहते हैं कि जीवहत्या महा पाप है, और ऐसा पाप कर धर्म होने की बात सोचना अनुचित है।

सभी मतवादियों एवं मजहब वालों को अपने-अपने मत एवं मजहब का अहंकार है कि हमारे यहां जो माना और किया जाता है वह ईश्वर की आज्ञा है। सद्गुरु कहते हैं कि यह तुम्हारा मिथ्या अहंकार है। कोई ऐसा ईश्वर नहीं है जो जीवहत्या धर्म बताता हो और नाना मतवालों को परस्पर विरुद्ध आज्ञा देकर उन्हें आपस में लड़ाता हो। ईश्वर के विषय में मनुष्य केवल कल्पना करता है, न कि कोई ईश्वर नाना मतवालों के यहां अपनी विरोधी किताबें, आज्ञाएं एवं मतवाद भेजता है।

सद्गुरु कहते हैं कि ये नाना मतवादी जो ईश्वर की आड़ लेकर अपनी अनर्गल बातों को प्रामाणिकता का जामा पहनाकर सबके गले उतरवाना चाहते हैं, इस अहंकार में ये न अपना कल्याण कर पाते हैं और न समाज का। वस्तुतः सारे मत, मजहब, विचार, ग्रन्थ मनुष्यों के मन की उपज हैं। इसलिए इनमें त्रुटियां, भ्रम, अज्ञान होना भी संभव है। अतः अपनी बातों पर पुनः विचार करना तथा सदैव उन्हें शोधते रहना मानव का विवेक है।

हम हर बात पर जैसे कल सोचते थे, उनमें से कई बातों पर आज दूसरे ढंग से सोचते हैं और आज का सोचना सच लगता है; फिर सैकड़ों-हजारों वर्ष के पूर्व हमारे पूर्वज जिस ढंग से सोचते थे, उन सारी बातों में उसी तरह आज भी कैसे सोचा जा सकता है! इसलिए हर मत एवं मजहब वालों को तथा हर इनसान को विनम्र होना चाहिए और अपनी मानी हुई बातों पर ताजे ढंग से सोचना चाहिए। जो विवेक से सच लगे, जिसमें किसी को पीड़ा न हो, किन्तु अधिक से अधिक लोगों का हित हो, वही काम करना चाहिए। यही धर्म है। अहिंसा और प्रेम ही धर्म है। केवल मानव के प्रति ही नहीं, प्राणिमात्र के प्रति हमदर्द होना चाहिए। ❑

आपुहि बरि आपन गर बांधा

लेखक—श्री कमलापति पांडेय

राजस्थान प्रान्त में आगरा-जयपुर रोड पर एक स्थान है जहां बालाजी का एक मन्दिर है। यहां भूत-प्रेतों को सजा दी जाती है। हां, यह सत्य है। आप स्वयं जाकर देख सकते हैं। वहां प्रेतादि बाधा से ग्रसित लोग ले जाये जाते हैं। प्रसाद रूप में उनकी अर्जी लगती है, फिर जब अगली आरती का घण्टा बजता है, तब पीड़ित स्वयं मन्दिर की ओर चल पड़ता है। मन्दिर में दीवालों से हथकड़ियां लगी हैं, जिनमें वह स्वयं को स्वतः बांध लेता है। कहा जाता है कि अर्जी सुन ली गयी और अपराधी बुला लिया गया, अपराध स्वीकार हो गया उसे और उसे सजा मिल गयी जिसे अब वह भुगत रहा है। अगले दिन तक या जब तक प्रेत की सजा पूरी नहीं होगी, पीड़ित उसी प्रकार हथकड़ी पहने पड़ा रहेगा। उसका भोजन-पानी वहीं होगा, केवल शंका समाधान हेतु वह बाहर जायेगा और स्वयं जायेगा। या तो भूत भाग जायेगा या अगले दिन उसे बेड़ी भी लग जायेगी। भूत भाग जायेगा या अगली सजा सश्रम होगी और वह मन्दिर के पीछे वाले मैदान में पत्थर उठाता-गिराता मिलेगा। यदि तब भी भूत नहीं जायेगा तो उसकी बाला जी के दरबार में पेशी होगी और न भागने पर उस प्रेत को फांसी दे दी जायेगी। पीड़ित स्वतः ही वहां लटकाये हुए लोहे के छल्लों में अपनी गर्दन डालकर झूल जायेगा। डरिये नहीं। पीड़ित को कुछ नहीं होगा। बस भूत मर जायेगा, कार्य पूरा हो जायेगा। हमने तो बिना प्रसाद चढ़ाये, बिना ही और सजाएं भुगते ही सीधे फांसी ले लिया था। मुझे बड़ा अच्छा लगा था, शायद इसलिए कि मेरे पर कोई भूत-प्रेत था ही नहीं। भूत-प्रेतों के होने या न होने के विवाद में मैं अभी नहीं पड़ना चाहता। मैं इस विवाद से भी अभी बचना चाहता हूं कि भूत मरा कि नहीं, मैं तो यह कहना चाह रहा हूं कि वह पीड़ित तो दूसरे की बनायी हथकड़ी-बेड़ी में स्वतः जकड़ा, दूसरे की बनायी फांसी में झूला। हम तो अपनी ही बनायी रस्सी से रोज अपना गला बांध रहे हैं और बांधते ही जा रहे हैं। उस पीड़ित के परिजन, पीड़ित की तरह विक्षिप्त तो नहीं ही थे, लेकिन उन्होंने पीड़ित के नाम पर स्वतः अपने गले में रस्सी बांध ली। भूत कब से भूत हो गया? समझना पड़ेगा कि पहले भूत हुआ कि सोखा हुआ कि ओझा हुआ। शास्त्रों में जगह-जगह लिखा मिलेगा 'सर्व भूतानाम्' तो क्या यह शब्द उन्हीं भूतों के लिए हैं, जो लोगों को लगा करते हैं? क्या शास्त्रकारों ने उन्हीं भूतों के कल्याण की कामना की है जो लोगों को लगा करते हैं? गीता में लगभग प्रत्येक अध्याय में सर्वभूतानाम् आया है। देवी जी की स्तुति में या देवी सर्वभूतेषु आता है। अरे भाई! संस्कृत भाषा में भूत उन सबको कहा जाता है जो पैदा हुए हैं। संस्कृत में हम सभी भूत ही हैं। तब वह कौन-सा भूत है जो किसी को इस प्रकार पकड़ लेता है कि बिना झाड़-फूंक या पूजा-चढ़ावा के जाता ही नहीं? हम यह नहीं कह रहे हैं कि पीड़ित झूठ बोल रहा है या मकर कर रहा है। हम तो केवल यह कह रहे हैं कि इस भूत नाम की चीज को पहचानिए। यह जीवित है, मरा हुआ नहीं है। यह भूत या तो हम हैं जो भूत समझ नहीं रहे हैं और जिस किसी को भूत बनाये घूम रहे हैं या वह भूत स्वयं वह पीड़ित है जो यह जान नहीं पा रहा है कि भूत वह स्वयं है लेकिन बहुत कुछ सम्भावना यह है कि यह भूत वह सोखा हो, वह ओझा हो जो सभी भूतों को जानने, उन्हें ठीक करने का दावा करता है। अब प्रेत को लेते हैं। यह संस्कृत भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ होता है यहां से भेजा हुआ। समझा जाता है कि यमराज जी के दूत मृतक को यमलोक ले जाते हैं। उसके शरीर को उसके मरते ही हम प्रेत कहने और समझने लगते हैं। न समझ में आये तो या तो गरुड़ पुराण जिसने पढ़ा या सुना हो उससे पूछ लीजिए या जब कहीं स्थिति बने तो मृतक के शव के साथ चल रहे पण्डित जी के श्लोक सुन

लीजिए। आप को जो शब्द सुनायी देंगे यदि आप संस्कृत नहीं जानते तो उनमें से आप केवल प्रेत-प्रेत ही सुन पाएंगे। बार-बार 'अमुक नाम प्रेत' सुनायी पड़ेगा। उस प्रेत को इतने लोग मिलकर जला डालते हैं, गहराई में गाड़ देते हैं या किसी के न होने पर उसे जब चील, कौवे, सियार, कीड़े-मकोड़े पूरा खा जाते हैं, तब यह फिर कहां से आ जायेगा और किस हाथ-पैर से पकड़ लेगा? उसकी आत्मा तो पहले ही दण्ड भोगने या जन्म लेने चली गयी। वास्तव में वह भूत-प्रेत हमारे मन में ही है। मन ही उसे रखता है, वही उसे प्रकट करता है, वही उसे समाप्त भी करता है। हमारा मन ही भूत-प्रेत है, वही जिन्न है, वही ब्रह्म राक्षस है, वही चुड़ैल, डाकिनी, साकिनी है और वही जादू, टोना, नजर, जोग, टोटका है।

हमारी बातों को आप ऐसे ही न मानिए। किसी की बात ऐसे ही नहीं मानना चाहिए। सुनना अवश्य चाहिए। यह ध्यान सदैव रखना चाहिए कि सुनाने वाला उसी तरह मनुष्य है जैसे हम मनुष्य हैं। अन्तर केवल यह है कि वह कुछ अधिक जानता है या यह भी हो सकता है कि वह कम जानता हो, जानने का नाटक कर रहा हो। थोड़ी ही सावधानी से दोनों में सही क्या है, पता चल जाता है। एक उदाहरण से शायद मैं अपनी बात अधिक स्पष्ट कर सकूं। एक आदमी पहलवानी करता है। वह 100 किलो का भार उठा लेता है। हम पहलवान नहीं हैं तो क्या हम 20-30 किलो भी नहीं उठा सकते? कम से कम यह तो समझ ही सकते हैं कि जो भार वह उठाये हुए है, वह हमारी शक्ति से अधिक है या कम है। और यह भी कि वह 100 किलो के आस-पास होगा या नहीं होगा। गीता में श्रीकृष्ण जी ने क्या कहा, उसे देखिए—

यान्ति देवव्रता देवान्पितृन्यान्ति पितृवतः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्तिमद्याजिनोऽपि माम्॥

'देवता को पूजने वाले देवता को प्राप्त होते हैं। पितरों को पूजने वाले पितर को, भूतों को पूजने वाले भूतों को और मुझे पूजने वाले मेरे को ही प्राप्त होते हैं।'

कबीर साहेब ने भी कहा—

कहैं कबीर सुनो हो लोई। भुतवा के पुजले भुतवा होई॥

अब भूत दो अर्थों में दिखाई दे रहा है। कोई भी लो दोनों पर बात सही ही है। चाहे भूत को जीवित मनुष्य मानो और चाहे मरकर भूत हुआ मानो। जैसे ही कोई पैदा हुआ, वह भूत हो गया। आप कम से कम भवति शब्द तो जानते ही होंगे। जिसका अर्थ होने से है। होते ही भूत हो गया, अभूत हो गया, अभवत् हो गया। समय के सम्बन्ध में भूत, भविष्य तथा वर्तमान तीन काल हैं। इसके अनुसार जो बीत गया, जो मर गया, समाप्त हो गया, वही भूत हो गया। इसी प्रकार जिसे मृत्यु पकड़ ले गया और जिसे हमने भी जला दिया, गाड़ दिया या जिसका शरीर लुटन्त हो गया, वही इस लोक से प्रेत हो गया। इस लोक से प्रेत हुआ, इस लोक में या इस लोक का प्रेत नहीं हुआ। इस लोक में रह जायेगा तो प्रेत कहा ही नहीं जा सकेगा।

जरा-सी जगह मिलते ही लोग दुकान लगा देते हैं। यह दुकान चाहे लोक बाजार वाली हो, चाहे परलोक वाली हो। यह हम देख तो रहे हैं लेकिन निरपेक्ष हैं या हम भी ग्राहक या दुकानदार के रूप में लिप्त हैं। यही नहीं, यदि हम या हमारे पूर्वज पहले कभी लिप्त थे या हम आगे के लिए दुकान की कोई सम्भावना देख रहे हैं तो हमारी लिप्तता, जानते हुए भी नहीं छूटती। हम परम्परा आदि की दुहाई देकर अपना बचाव करते रहते हैं।

ऐसा नहीं समझना चहिए कि हमारे अन्दर भूत-प्रेतादि का भ्रम नया है या इन मनःकल्पनाओं से हमीं ग्रसित हैं। यह रोग सारे संसार में सब जगह सदैव रहा है। अनादिकाल से यह है और बना हुआ है। हमारे वेद मानव इतिहास के आदि साहित्य भी हैं। वेद मन्त्र मनुष्य के पूर्व के तो हो ही नहीं सकते अपितु ये मानव के व्यवस्थित हो जाने के बाद कहे गये हैं। इसलिए इनके मन्त्रों से तत्कालीन समाज हमें झांकता हुआ दिखायी देता है। अथर्वा ऋषि कहते हैं कि बहुत समय तक मैं भटकता रहा, तब संसार में उपस्थित ज्ञान मेरे

पास आया। ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में वर्तमान भूत-प्रेतादि लगभग वर्तमान रूप में खोजे जा सकते हैं—

अपेत वीत वि च सर्पतोस्मा एतं पितरो लोकमक्रन्।
अहोभिरद्भिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्यवसानमस्मै॥

(ऋग्वेद 10/14/9 व अथर्ववेद 18/1/55)

यह मन्त्र दोनों वेदों में इसी प्रकार उपलब्ध है जिसका अर्थ है—हे पिशाचो! पितर गणों ने इस मृतात्मा के लिए यह स्थान निर्धारित किया है अतः आप यह स्थान छोड़कर दूर चले जाएं। दिन-रात तथा जल से सिंचित यह स्थान मृत देहों के लिए है! अब देखिये। पिशाचों को दूर जाने के लिए कहा जा रहा है। पिशाच हैं तभी तो! तो क्या पिशाच जीवित होते थे? यदि वे जीवित न होते तो उन्हें दूर जाने के लिए नहीं कहा जाता क्योंकि वह स्थान मृत देहों के लिए ही निर्धारित था। स्पष्ट है कि पिशाच लोग जीवित लोग थे परन्तु भूत-प्रेत वालों को जगह तो मिल ही गयी और उन्होंने पिशाच की स्थापना कर डाली। बाद में यही पिशाच भूत-प्रेतादि हो गया। इसे और साफ करने के लिए नरपिशाच शब्द आ गया और वैदिक काल का वह पिशाच अब वह हो गया जो मनुष्य के मरने पर उससे बनता है। जिन्हें पिशाच नरपिशाच और मृत नर बना पिशाच!

ऋग्वेद से अथर्ववेद तक के मन्त्रों को देखने से तत्कालीन समाज का चित्र कुछ इस तरह उभरता है कि सर्वत्र भय, युद्ध का माहौल था। जल, अन्न, धन और गायों और चरागाहों की खोज में और उन पर आधिपत्य जमाने के लिए प्रयाण और युद्ध का दौरदौरा था। न तो लोगों को दिन में चैन था और न ही रात्रि में चैन था। दिन में या तो नये स्थान पर स्थापित होने के लिए युद्ध होते थे या स्थान बचाने के लिए युद्ध होते थे और रात में हिंसक पशुओं से लेकर विरोधियों से सावधानी रखनी पड़ती थी। ऐसे ही विरोधियों को कभी यातुधान, कभी पिशाच, कभी असुर आदि कहा गया है। ऊपर वेद का जो मन्त्र सन्दर्भित किया गया है, वह उपर्युक्त कथन को पुष्ट करता है। श्मशान की भूमि की तब कोई लिखा-पढ़ी जैसी चीज नहीं थी। अन्त्येष्टि स्थल चुनना, उस पर अपना अधिकार बनाये रखना, दूसरों को वहां से दूर करना और उन्हें सावधान करना कि वे उस स्थल का अतिक्रमण न करें, यह भी संकेत उक्त मन्त्र से मिलता है। जैसे कि यमराज ने वह स्थान उस मृतक के लिए निर्धारित किया है या पितरों ने निर्धारित किया है, वहां अब वह मृतक रहेगा इसलिए पिशाचो, वहां से दूर हो जाओ। वह स्थान जल से सिंचित है। स्थान का चयन भी हो गया, आधिपत्य भी हो गया और विरोधी को सचेत भी कर दिया गया। विरोधी चुपचाप तो बैठेगा नहीं, वह इसका विरोध करेगा। हमारे पास विरोधी का कोई साहित्य नहीं है अन्यथा यह पता चलता कि इस प्रकार आधिपत्य जमाने की कार्यवाही का विरोधी किस प्रकार विरोध करता था। आधिपत्य जमाने के लिए कुछ न कुछ करना होता है। आज भी विवादित स्थलों पर आधिपत्य जमाने का यह अचूक नुस्खा बना हुआ है। विवादित स्थल पर पूजा-पाठ, भजन-कीर्तन, मन्दिर स्थापना, ताजिया रखना आदि आज भी होता ही है। अन्त्येष्टि के समय अन्त्येष्टि स्थल पर उक्त घोषणा का जो वर्णन है, वह स्थल पर इस निमित्त होने वाले कर्मकाण्ड का संकेत है।

तो बात भूत-प्रेतों की हो रही थी। भूत-प्रेत आदि केवल हमारे मन में बसे हुए भय के प्रकाशन मात्र हैं। हमारा मन ही शब्द रूप में उन्हें ग्रहण करता है, संजोकर रखता है और भय की स्थिति में वही शब्द भूत-प्रेत आदि के रूप में प्रकट हो जाते हैं। हमारे बड़े हमें बचपन से ही भूत, प्रेत, चुड़ैलों की कहानियां सुनाते हैं। ये कहानियों के शब्द हमारे मानस में एक चित्र के रूप में मन द्वारा संजो लिये जाते हैं। उस समय यह भी भाव रहता है कि जो बात हमारे बड़े कह रहे हैं, वह बात सच्ची ही होगी। अतः वह चित्त-पुष्ट हो जाता है। इतना कि कभी-कभी वह भूत-चुड़ैल बच्चों के स्वप्न में भी आ जाते हैं और बच्चा सोते से जाग जाता है। इस प्रकार के स्वप्न बच्चों को, तरुणों को, जवानों को और यहां तक कि बूढ़ों को भी आते हैं। जब हम अर्द्धनिद्रा में होते हैं तब हमारा मन थोड़ा विश्राम पाकर

अपना खजाना खोलता है। इस क्रम में संजोकर रखे गये तमाम चित्र, तमाम कल्पनाएं खजाने के चीथड़ों की तरह हमारे सामने स्वप्न रूप में आते रहते हैं। अब इन शब्दों का और चमत्कार देखिए। हमारे बड़े कहते हैं कि उस पीपल के पेड़ के पास मत जाना। उस पर फलाना रहता है। तालाब पर शाम के समय न जाना, वहां फलाना बुड़वा रहता है। या फलां जगह ठीक से जाना, सिर झुका लेना, वहां डिवहार बाबा रहते हैं, वहां काली माई रहती हैं, वहां समय माई रहती हैं। इसका प्रभाव यह होता है कि हम जब भी ऐसे स्थान से गुजरते हैं तो बताये गये लोगों का ध्यान बरबस आ जाता है और यदि उसी बीच किसी तरह का व्यवधान हो गया या संयोग से वे चित्र चलते-फिरते दिखाई दे गये, तब हम बाधा से ग्रसित हो जाते हैं। मन का प्रभाव शरीर पर पड़ता ही है। हम डरते हैं तो शरीर कांपता है। रोयें खड़े हो जाते हैं जबकि हमारा शरीर नहीं डरा है, डरे हम हैं। जब शरीर इस प्रकार प्रतिक्रिया करेगा तो ताप हो जाना, किसी अंग में दर्द हो जाना आदि स्वाभाविक है। इसी कारण एक मनोरंजक तथ्य यह भी है कि रात में या सन्नाटे में हमको कहीं बाहर से अपने ही मुहल्ले या गांव में आने पर डर लगता है क्योंकि हमारे मन में यह दर्ज है कि अमुक जगह पर अमुक है। वहीं जब हम किसी अनजान स्थान पर जा रहे होते हैं तो भूत-प्रेतों का डर हमें नहीं लगता, चोरों-डाकुओं का डर भले लगे। इस प्रकार स्पष्ट हो रहा है कि भूत-प्रेत हमारे अन्दर हमारे द्वारा ही बसाये गये हैं और हमारे द्वारा ही वे प्रकाशित किये जाते हैं और हमारे ही जैसे लोग उनसे हमें मुक्ति दिलाते हैं। हमारे वेदों के ऋषियों ने भी उनसे हमें मुक्त करने का कार्य किया है परन्तु अन्तर है।

हमारे ऋषियों ने यह कभी नहीं कहा कि अमुक मन्त्र पढ़ने से या अमुक क्रिया करने से भूत-प्रेत भाग जाते हैं। उन्होंने भूत-प्रेतों को भगाने, बांधने, मारने आदि का कार्य देवताओं पर छोड़ दिया था। इस निमित्त वे केवल देवताओं की स्तुति ही करते थे। मन्त्रों को देखिए तो लगभग हर प्रकरण में यह उल्लेख मिलेगा कि अमुक को दूर करता हूं। अमुक को भगाता हूं और यह भी कि अमुक ऐसे भाग गया, वैसे भाग गया। मैंने निवेदन किया कि भूत-प्रेत हमारे ही मन की उपज हैं। यह तथ्य हमारे ऋषियों को ज्ञात था इसलिए उन्होंने यही प्रयास किया कि भूत-प्रेतों से पीड़ित व्यक्ति को यह विश्वास हो जाय कि उसे पीड़ा देने वाला भूत-प्रेत निकल गया है और अब वह नहीं आएगा। ऋषियों ने भूत-प्रेतों का कोई मुकाम भी तय नहीं किया था, न उनकी कोई योनि कल्पित की थी और न ही उनकी उम्र। उनका यह धन्धा नहीं था। बाद में लोगों ने भूतों की एक योनि बना दी। उनके लड़के-बच्चे, मामा-नाना भी बना दिया। उनकी एक उम्र भी निर्धारित कर दी जो एक हजार वर्ष कम से कम है। यही नहीं, उनके वर्ण भी निर्धारित कर दिये और धर्म भी। अंग्रेजों का भूत घोष्ट हो गया। मुसलमानों में जिन्न बाबा हो गये। हिन्दुओं में ब्राह्मण भूत ब्रह्म हो गया और लोक में वह बरम बाबा हो गया। क्षत्रिय भूत ब्रह्मराक्षस हो गया। हालांकि ये कम मिलते हैं। वैश्यों के भूत की मुझे जानकारी नहीं है। अन्य के भूतों में सबसे प्रसिद्ध नाम नट्ट बाबा का है, वैसे नकछेद बाबा भी होते हैं। कलवर बाबा भी होते हैं। एक आश्चर्यजनक बात यह है कि मरकर ही भूत होना बताया गया लेकिन कोई ओझा और कोई सोखा यह नहीं बताता कि अमुक भूत आसपास के किस गांव के, किस घर का पूर्वज है। ऐसा बताने में बहुत बड़ा संकट उस ओझा, सोखा पर आ सकता है। इसलिए भूत बाहर के बताये जाते हैं। उपर्युक्त जातिगत नामों से बताये जाते हैं। उनका स्थान कोई पेड़, कोई खंडहर, कोई तालाब, कोई चौराहा बताया जाता है। एक आश्चर्यजनक तथ्य यह भी है कि गांवों में भूत ज्यादा हैं, शहरों में कम हैं। शहरों में भी पॉश लोकलिटी में नहीं हैं। झुग्गी-झोंपड़ियों वाले मुहल्लों में हैं। हमने तो देखा है कि हमारे गांव के वे पेड़ जिन पर भूत रहते थे, जिन पर नकछेद बाबा रहते थे या तो गिर गये या काट डाले गये। अब वे जाने कहां रहते होंगे। मैं यह भी देख रहा हूं कि जहां पहले माह में एकाध भूत या चुड़ैल किसी-किसी को लगते थे आज नहीं लगते। गांव में दो-तीन सोखा टाइप के लोग थे, आज कोई नहीं है।

एक है परन्तु लोग उनकी सोखेती का मजाक ही उड़ाया करते हैं। कुल मिलाकर भूतों-प्रेतों की स्थिति ठीक नहीं है। उनकी जनसंख्या अब घट रही है। इसका कारण यह नहीं है कि हमारे गले की कोई रस्सी कम हो गयी है। इसका यह भी कारण नहीं है कि हमने रस्सी बनाना बन्द कर दिया है। इसका यह भी कारण नहीं है कि हमने अपने गले में रस्सी डालना या दूसरे के गले में रस्सी डालना छोड़ दिया है। वास्तव में हम अब नयी-नयी रस्सियां बनाने और अपने गले में डालने लगे हैं। हमारा शैक्षिक स्तर बढ़ गया है, हमारी आय बढ़ गयी है, हमारे पास साधन हो गये हैं और समय हो गया है इसलिए अब हम अच्छी रस्सियां बना रहे हैं। और अच्छी रस्सियां पहन रहे हैं। भूत-प्रेतों की रस्सी थोड़ा कुरूप थी। अब तो हम वेबसाइटों, ब्लाग, ट्विटरिंग साइट्स की बनी रस्सियों का उपयोग कर रहे हैं। वैसे अभी भी जनता में टी.वी. चैनलों द्वारा बनाई जा रही रस्सियां या सिनेमा द्वारा बनाई जा रही रस्सियां ही पापुलर हैं।

भूत-प्रेत, टोना, टामर, नजर, वशीकरण, उच्चाटन, मारन, नाशन, दमन, मृत्युबाण आदि के सम्बन्ध में अथर्ववेद का अध्ययन अत्यन्त उपयोगी होगा परन्तु यह ध्यान रखना होगा कि वेदों के ऋषि इसके लिए कोई मन्त्र या कोई प्रक्रिया, कोई पूजा-विधि निर्धारित नहीं करते। यह सब तो हमने निर्धारित कर रखा है। वशीकरण मन्त्र की बात करते हैं। लोगों को विश्वास है कि ऐसा कोई मन्त्र होगा जिससे किसी को वश में किया जा सकता है या जिससे कोई अपने आप वश में हो जायेगा। आजकल अधिकतर लोग अपने उद्दण्ड पुत्र को, अपने पड़ोसी को और यहां तक कि अपने मुकदमे में फैसले लिखने वाले जज को, कापी जांचने वाले अध्यापक को वश में करने या कराने का उपाय करते देखे जाते हैं। कुछ लोग अपनी किसी प्रेमिका को इस मन्त्र से वश में करना चाहते हैं। नेता लोग भी विरोधियों पर या वोटरों पर इसका प्रयोग करते हैं। यह सुना जाता है। मैं ऐसे सभी लोगों को गोस्वामी तुलसीदास का एक दोहा सुनाना चाहता हूं। तुलसीदास ने रामचरितमानस लिखा था और कहा था कि रामचरितमानस नाना निगमागम पुराण सम्मत है। निगम-आगम में ही सारे वेद, उपनिषद् हैं। अर्थात गोस्वामी जी ने सबका अध्ययन किया था। आप भी इसे मानते हों, तब उनके द्वारा बताये गये वशीकरण मन्त्र का प्रयोग क्यों नहीं करते? किसी तान्त्रिक को खोजते क्यों घूम रहे हो? वह कुछ भी नहीं कर पाएगा, केवल इतना करेगा कि आपकी जेब ढीली कर देगा और यदि आप असावधान रहे तो आपको बर्बाद कर देगा। गोस्वामी जी ने कहा है—

तुलसी मीठे वचन ते, सुख उपजै चहुँ ओर।
वशीकरण यह मन्त्र है, तज दे वचन कठोर॥

जब वशीकरण हो गया तो उच्चाटन की आवश्यकता नहीं, मारन की आवश्यकता नहीं, विनाशन की आवश्यकता नहीं।

चारों वेदों में यदि लोक, परलोक, अन्तरिक्ष, द्यु, मन, वाक् सहित अन्य भावों के ज्ञान सम्बन्धी सूक्तों को छोड़ दिया जाय तो शेष मन्त्रों में ऋषि विभिन्न देवताओं से कुछ न कुछ याचना करते दिखायी देते हैं। यह याचनाएं कभी अपनों को कुछ दिलाने की, कभी स्वयं के लिए कुछ पाने की, कभी अपने विरोधियों को वे वस्तुएं न देने की, कभी विरोधियों के पास उपलब्ध वस्तुओं को छीन लेने की और कभी विरोधियों से छीनकर अपने को या अपने पक्ष को दे देने की हैं। युद्ध ही युद्ध! कहीं देवताओं का असुरों से, कहीं-कहीं किसी एक देवता का किसी एक या कई असुरों से, कभी अपनों का गैरों से और कभी अपनों का अपनों से, यहां तक कि कभी एक ऋषि का दूसरे ऋषि से। इससे स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समाज एक साथ कई विपत्तियों से जूझ रहा था। प्रशंसा करनी होगी उस जीवट की जिससे वे लोग दुश्मनों से लड़ भी रहे थे और साथ ही एक समाज की संरचना का विश्लेषण और निर्माण भी करते जा रहे थे। यह सब कुछ उस वातावरण में हो रहा था जिसमें भय ही भय व्याप्त था।

—क्रमशः

प्रवचन

माया मोह मोहित कीन्हा

(परम पूज्यवर गुरुदेव श्री अभिलाष साहेब जी द्वारा कबीर आश्रम, प्रीतमनगर, इलाहाबाद में रविवारीय सत्संग के अवसर पर दिया गया प्रवचन। प्रस्तुति—श्री रामकेश्वर जी)

सज्जनो तथा देवियो! सद्गुरु कबीर ने बीजक में एक पद कहा है—

माया मोह मोहित कीन्हा, ताते ज्ञान रतन हरि लीन्हा।
जीवन ऐसो सपना जैसो, जीवन सपन समाना।
शब्द गुरु उपदेश दीन्हों, तैं छाडु परम निधाना।
ज्योति देखि पतंग हुलसै, पशू न पेखै आगि।
काल फांस नर मुग्ध न चेतहु, कनक कामिनी लागि।
शेख सैय्यद कितेब निरखें, सुमृति शास्त्र विचार।
सतगुरु के उपदेश बिनु तैं, जानि के जीव मार।
कर विचार विकार परिहरि, तरण तारण सोय।
कहहिं कबीर भगवन्त भजु नर, दुतिया और न कोय।

सद्गुरु कहते हैं कि माया-मोह ने लोगों को मोहित कर दिया है इसीलिए सबका ज्ञान-रतन खो गया है। सब माया के मोह में विमूढ़ हो गये हैं। आदमी जहां विमोहित हो जाता है वहीं वह विमूढ़ होता है। सुन्दरता एक धोखा है लेकिन इस सुन्दरता में कितने बड़े-बड़े मोह गये हैं और आज भी मोह रहे हैं। सुन्दरता बहुत थोड़े ही दिन की चीज है और सुन्दरता जहां है वहां थोड़ी-सी सूई चुभो दो तो ऐसी चीज निकलेगी कि मक्खियां भिनभिनाने लगेंगी और चित्त आपका हट जायेगा। यह तो विवेक से समझ सकते हो कि जिसको हम सुन्दर मानते हैं उसके अन्दर क्या भरा है। उसमें नरक के सिवा और क्या है लेकिन उसी में विमोहित होकर आदमी ने कैसा-कैसा अत्याचार किया है और आज भी कर रहा है। लोकलाज, समाज, धर्म और परिवार—इन सबकी मर्यादा को त्यागकर कैसे-कैसे दुष्कर्म लोग कर डालते हैं कि उसको कहने-सुनने में लज्जा लगती है। सुन्दरता की जितनी भी चीजें हैं वे सब माड़ी का सिंगार हैं। कबीर साहेब ने कहा है—

रतन का जतन करु, माड़ी का सिंगार।
आया कबीरा फिर गया, झूठा है हंकार॥

वे कहते हैं कि रतन का जतन करो। सारा सिंगार माड़ी का है। माड़ी चढ़ा हुआ कपड़ा कितना चिकना होता है लेकिन उसे धो दो तो वह खखरा हो जाता है। सारा चाकचिक्य माड़ी का है। माड़ी का दूसरा अर्थ होता है—मांड़ी। आप सात-आठ बजे शाम को किसी बाजार में जाइये तो आप देखेंगे कि वह बाजार जगमगा रहा होगा। लेकिन दो घंटे बाद दस-बारह बजे उसमें फिर जाइये तो बत्तियां बुझी हुई होंगी, इधर-उधर कुत्ते घुम रहे होंगे, कोई पागल आदमी भी कहीं बैठा मिल जायेगा या ऐसे ही आवारागर्दी करनेवाला कोई व्यक्ति होगा। बाजार में यत्र-तत्र पत्तल-दोने पड़े होंगे, कूड़ा-कचरा होगा और दो घंटे पूर्व जो रौनक, जो सौंदर्य था वह अब नहीं रह गया होगा। वहां अब सारा सिंगार मांड़ी का हो गया होगा। "मांड़ी का है" इसका अर्थ है कि बाजार का है या माड़ी लगा हुआ कपड़ा का है।

"माया मोह मोहित कीन्हा" साहेब कहते हैं कि माया-मोह ने मोहित कर दिया है। इसीलिए ज्ञान-रतन खो गया है। शुक्ल यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय में एक मंत्र आता है—

हिरण्यमयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत्त्वम् पूषनपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये॥

ऋषि कहते हैं कि सत्य का मुख सोने के बर्तन से ढका है। इसलिए ऐ पोषण चाहनेवाला, ऐ कल्याण चाहनेवाला साधक, उसे हटा दे। सत्य और धर्म के दर्शन के लिए तू उस सोने के बरतन को हटा दे।

सोने के बरतन से सत्य का मुख ढका है, इसका मतलब है कि दुनिया के चाकचिक्य से सत्य ढका है।

सोने का बरतन है—चमक-दमक। दुनिया की चमक-दमक से सत्य ढका है।

हमारी इन्द्रियां बहिर्मुख हो चली हैं। आंखें रूप को देखती हैं। कान शब्द को सुनते हैं। नाक गंध को सूंघती हैं। जीभ रस को चखती है। त्वचा स्पर्श करती है। इस प्रकार सारी इन्द्रियां बहिर्मुखी हैं। इसलिए सुबह से ही उठकर हम बहिर्मुख हो जाते हैं और बाहर जो कुछ दिखाई और सुनाई देता है उसी में प्रलुब्ध हो जाते हैं और अपने आपा को भूल जाते हैं। अपने रत्न को, अपने ज्ञान को भूल जाते हैं। जिसको आत्मा प्रिय है, राम प्रिय है, कल्याण प्रिय है, मोक्ष प्रिय है, शांति प्रिय है, जीवन में अनन्त सुख प्रिय है, जो सुख कभी भी घटनेवाला नहीं है वह सुख जिसे प्रिय है उसे अपनी इन्द्रियों को बहिर्मुखता से लौटाना होगा। उनको बाहर से अपनी तरफ लौटाकर अंतर्मुख करना होगा और मन को भी अंतर्मुख करना होगा। तब सत्य-धर्म के दर्शन होंगे।

सद्गुरु कहते हैं कि "माया मोह मोहित कीन्हा" माया-मोह ने सबको मोहित कर दिया है। सब लोग दुनिया की चीजों से अपने आपको धोखा देकर भटका दिये हैं। हर आदमी हर समय भटकता है। वह चैन से विश्राम नहीं कर पाता है। उसका मन उसको हरदम धोखा देता रहता है। मनुष्य का मन इतना घोर जंगल है कि उसमें समाधान नहीं सूझता। जैसे अंधियारी रात हो और विकट जंगल हो उसमें कोई अपने घर का रास्ता भूल जाये, वैसे ही विकट यह मन है। आदमी अपने मन के जंगल में उलझ जाता है और उसी में उलझ-उलझकर मरता है।

आदमी पेटभर खाता है, तनभर कपड़ा पहनता है, मकान में रहता है लेकिन उलझा रहता है। जिनके पास उपलब्धि है और जो खूब मेवे-मलाई खाते हैं वे भी बेचैन रहते हैं क्योंकि यह मन की बेचैनी ऐश्वर्य से नहीं मिटती किंतु और बढ़ जाती है। यह मन की बेचैनी प्राणियों की चमक-दमक में और भी बढ़ जाती है। प्राणियों की चमक-दमक क्या है—सुन्दर-सुन्दर बच्चे हैं और तोतली बोली बोलते हैं, कुछ लड़के कालेज में पढ़ रहे हैं जो खटपट-खटपट करते आते-जाते हैं तो मन को हर लेते हैं लेकिन यह समझ लो कि इसमें जितना मन बसाओगे अंत में उतनी पीड़ा होगी। अंत में उतना क्लेश होगा। इस संसार में जो अपना मन जितना रमाता है अंतिम में उसके अंदर में उतने ही कांटे चुभते हैं। यहां मिलने वाला अगर कुछ है तो वह केवल धोखा है। यहां केवल धोखा! धोखा!! धोखा!!! है और इसके अलावा कुछ यहां मिलने वाला नहीं है लेकिन लोग बड़े भावुक हो जाते हैं।

थोड़ी-सी अनुकूलता पाकर मारे खुशी के फूल जाते हैं, थोड़ी-सी प्रतिकूलता पाकर हाय-तोबा करने लगते हैं। लेकिन ज्ञान बताता है, ऋषि-मुनि, संत-सद्गुरु, पीर-पैगम्बर हमें बताते हैं कि ऐसे रास्ते पर चलो कि तुम्हारे जीवन में एकरूपता हो जाये, एकरसता हो जाये। सुख मिल जाये तो भी विमोहित नहीं और दुख मिल जाये तो भी विक्षुब्ध नहीं। सुख में विमोहित होकर फूल जाते हैं और दुख तथा शोक करते हैं लेकिन जो परमतत्त्व को जान जाता है उसके लिए ऋषि कहते हैं—"का शोकः का मोहः"—वहां शोक कहां और मोह भी कहां। शोक और मोह तो अनाड़ीपन है।

मोह कब होता है? जैसे कोई अनुकूल चीज मिली कि मोह हुआ और उसमें आप डूब जाते हैं। किन्तु अनुकूलता रोज रहेगी नहीं। प्रतिकूलता निश्चित ही आना है। प्रतिकूलता आयी कि शोक में डूब गये। हम पर शोक और मोह के धावा पर धावा होते रहते हैं और हम पर होते क्या रहते हैं बल्कि बेवकूफी से हम उन्हें निमंत्रित करते रहते हैं। इस दुनिया में जितना बेवकूफ हम हैं उतना बेवकूफ शायद ही कोई हो। ऐसा जो समझता है वही साधक बन सकता है लेकिन ऐसा नहीं समझ पाते हैं। लोग तो समझते हैं कि यहां सब बेवकूफ हैं हम ही समझदार हैं लेकिन दूसरे की बेवकूफी को हम क्यों देखें। दूसरे लोग अपनी बेवकूफी स्वयं देखें। हमारी अपनी जितनी बेवकूफी है वह हमारे सिर से ऊपर तक है और हमारे में जितने दोष हैं उतना दोष दूसरों में कहां हो सकते हैं।

अगर दुनिया में कोई दोषी हो सकता है तो मैं ही हो सकता हूं ऐसा समझने वाला ही साधक हो सकता है। अगर साधना करनी है तो अपने दोषों को, अपनी बेवकूफियों को निरन्तर देखें। स्वयं को देखें कि हमारा मन कब नरक में डुबा देता है। आप बैठे हैं लेकिन मन आपको लेकर कहां चला गया इसका ख्याल कहां रहता है! सुलतानपुर के एक संत थे। वे अकेले में बैठे रहते तो बैठे-बैठे ही कहते—"हां-हां, कहां जा रहा है रे! पागल कहीं का! कहां गया रे!" इस प्रकार वे अपने मन को डांटते रहते थे। कहीं भण्डारा का आयोजन रहता और संत समाज जुटा रहता। वहां वे भी जाते। भक्त लोग तो भण्डारे में कभी लड्डू, कभी खीर-पूड़ी, कभी-कभी मालपूआ भी बनवाकर संतों-भक्तों को खिलाते रहते हैं। मान लो कहीं भण्डारे मे खीर-पूड़ी बनती रहती तो वे संत अपने मन को सम्बोधित करते हुए कहते—"अच्छा-अच्छा, तुम खीर खाओगे। टांय-टांय कर रहे हो। खीर खाओगे।"

ऐसा वे अकेले में अपने मन को कहते रहते और भोजन करने बैठते तो खीर नहीं खाते, भात खाकर उठ जाते और कहते—"अच्छा, खाओ खीर, देखता हूं कि कैसे तुम खीर खाते हो।" वे एक अद्‌भुत संत थे। अब हम लोगों को उनकी नकल नहीं करनी चाहिए क्योंकि उनका वह स्वाभाविक था और जिनका जो स्वाभाविक है वही ठीक है।

ऐसे ही अन्य सन्तों में, अन्य लोगों में, अन्य महापुरुषों में कुछ उनका स्वाभाविक होता है। उनकी नकल नहीं करनी चाहिए लेकिन उसके तथ्य में यह देखना चाहिए कि हम भी मन को देखें कि मन कहां जा रहा है। मन कहां-कहां हमें डूबा रहा है। किस-किस नरक में हमको डाल रहा है लेकिन हम ऐसा नहीं करते। हम तो माया के मोह में मोहित हैं।

माया की साहेब ने बड़ी सुन्दर परिभाषा दी है—"संतो आवै जाय सो माया" जो आये और आकर चली जाये वही माया है। बचपन से आज तक जितनी चीजें आपके पास आयीं हैं क्या वे आज रुकी हैं। आपकी जवानी आयी और रुकी नहीं। कोई चीज यहां मिलकर रुकी नहीं रही। सब मिल-मिलकर छूटती चली जाती हैं। यही तो माया है। यहां सब कुछ का छूटना तय है।

एक बूढ़ा आदमी रास्ते-रास्ते चला जा रहा था। बुढ़ापा के कारण उसकी कमर झुक गयी थी। इसलिए वह लकड़ी पकड़े नीचे की ओर मुख किये जा रहा था। किसी मनचले युवक ने देखा तो हंसा और व्यंग्यपूर्वक पूछा—"बाबा, नीचे देखते-देखते जा रहे हो। क्या तुम्हारी कोई चीज खो गयी है जिसको खोज रहे हो?"

बूढ़ा भी कम न था। उसने भी नहले पर दहला जड़ा और कहा—"बेटा! जवानी खोज रहा हूं और मेरी उम्रतक तुम भी रह जाओ तो तुम भी खोजोगे।" युवक झेंप गया। मतलब है कि जवानी जब खो जाती है तो खोजने से नहीं मिलती। चाहे जितना खोजो जवानी मिलेगी नहीं। जवानी चली गयी। यहां का हमारा सब कुछ चला गया। यहां की सारी चीजें आती और जाती हैं और वही माया है। उसी में हम भोला बन जाते हैं और भटक जाते हैं। नन्हें-नन्हें बच्चों को देखकर मन कितना भूल जाता है लेकिन जब वे ही जवान होते हैं, उनकी पत्नी आती है, उनके बच्चे होते हैं तो वे अनसुहाते हो जाते हैं और तब बड़ी पीड़ा होती है। तब मन में होता है कि अरे, बड़ी आशा थी इनसे लेकिन ये "ऐसे" हो गये। यह कैसे हो गया, क्योंकि पहले से आप भावुक बन गये थे। आपको पहले से आशा नहीं करनी चाहिए थी। उनकी सेवा कर देनी चाहिए थी। उनको योग्य बना देना चाहिए था। उनके प्रति जो आपका कर्तव्य था उसे आपको कर देना चाहिए था लेकिन उनसे कुछ इच्छा नहीं करनी चाहिए थी।

आप निष्काम कर्म की बात सुने होंगे। निष्काम कर्म का प्रथम उपदेश भारतीय परम्परा में वेद में दिया गया है। शुक्ल यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय में निष्काम कर्म का दूसरा मंत्र आया है जो इस प्रकार है—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥

इसका अभिप्राय यही है कि निष्काम कर्म करते हुए सौ वर्ष तक जीओ। ऐसा कर्म करो कि लिपायमान न

हो। कर्म न करने की कोई गुंजाइश नहीं है। कर्म तो करना पड़ेगा। कर्म न करो तो बनेगा नहीं। सबको खाना-पीना तो पड़ेगा ही। कोई-कोई संत ऐसा है जो कोई कर्म नहीं करते। वह खा-पी लेता है, जाकर टट्टी-पेशाब कर लेता है लेकिन इतना तो उसे भी करना पड़ता है और सभी लोग इतना ही करें तो कैसे चलेगा। इसलिए काम तो करना पड़ेगा लेकिन काम करते हुए लिपायमान न हो यह रास्ता अपनाना पड़ेग़ा और वह रास्ता निष्काम कर्म ही है—कामना को जीतकर काम करना। आप लोगों को यह बात बहुत कठिन लगती होगी कि कामना को जीतकर निष्काम कर्म कैसे करेंगे लेकिन निष्काम कर्म होता है। आप मोह से अपने को जितना ऊपर उठायेंगे उतना निष्काम कर्म कर पायेंगे।

सब लोग तो हो चले हैं मोही। इसलिए तनिक-तनिक बात में बदला चाहते हैं। एक सज्जन ने मुझे पत्र में लिखा था कि महाराज, सबके लिए उपकार करता हूं। लेकिन मैं दुखी हूं क्योंकि लोग मेरा प्रत्युपकार नहीं करते बल्कि अपकार ही करते हैं। आप कहते हैं कि अच्छे मार्ग में चलो, सुखी रहोगे लेकिन मैं सुखी नहीं हूं। मैं तो सदैव अच्छा काम करता हूं। मैं परोपकार करता हूं लेकिन लोग मुझे दुख देते हैं। किसी से मैं कुछ चाहता भी नहीं हूं। फिर भी लोग मुझे दुख देते हैं।

मैंने उनको पत्र लिखा कि "किसी से कुछ भी नहीं चाहते" अपने इस वाक्य पर आप विचारें। यह कैसे हो सकता है कि "हम कुछ नहीं चाहते हैं और हम दुखी हैं। जिनका हम उपकार करते हैं उनसे हम कुछ नहीं चाहते हैं लेकिन लोग हमें सताते हैं और हम दुखी हैं।"

मैंने उनको लिखा कि आप दुखी इसीलिए हैं कि आप कुछ चाहते हैं और आप चाहते यही हैं कि लोग आपको अच्छा कहें। यह चाहना बहुत भयंकर है। लोगों का भला कर दें और बदले में कुछ न चाहें। यदि बदले में कुछ नहीं चाहेंगे तो शिकायत नहीं करेंगे। अपनी कमजोरी के फल में ही शिकायत होती है और जो अपने को शोध लेता है उसके जीवन में शिकायत नहीं रह जाती है। जो अपने को जितना शोधेगा उसके जीवन से उतनी ही शिकायत दूर होगी।

एक सोनार सोना या चांदी को ढालकर जब कोई रूप देना चाहता है तब उसको वह गरमा-गरमा कर गढ़ता है और गढ़ते-गढ़ते इतना सुन्दर रूप दे देता है कि देखने लायक हो जाता है। ऐसे ही जो अपने आपको सुधारता जाता है, गढ़ता जाता है, बनाता जाता है, उसके जीवन में शिकायत घटती चली जाती है। वह शिकायत नहीं करता है। लोगों को जीवन में बहुत शिकायत रहती है। पत्नी की शिकायत, पति की शिकायत, लड़की की शिकायत, लड़के की शिकायत, माता-पिता की शिकायत, भाई की शिकायत, किसी की भी शिकायत करते हैं तो इसका मतलब है कि आप कमजोर हैं और बुराइयों में लिपटे हैं।

आप लोग कहते हैं कि लोग बड़े खराब हैं लेकिन क्या सबको अच्छा बनाकर उसके बाद आप शिकायत से मुक्त होंगे? क्या आप दुनियाभर को बिलकुल ठीक करके मुक्त होंगे और क्या यह कभी हो सकता है? क्या दुनिया भर में चाम बिछाकर आप चल पायेंगे। अरे, आप अपने ही पैरों में चाम की जूती पहन लें तो मानो सब जगह चाम बिछ गया। अपने को ठीक करना बड़ा सरल रास्ता है लेकिन हम सब ऐसे पागल हैं कि अपने को ठीक नहीं करते हैं और सबको ठीक करने के चक्कर में पड़े रहते हैं। कोई सबको ठीक क्या कर पायेगा। सबके दोषों को देखता रहेगा और कहता रहेगा कि सब गलत हैं, केवल हम ही अच्छे हैं।

लोग घोर अंधकार में जीते हैं। माया वही है जो आवे और आकर चली जाये। हम बचपन से आजतक देखें तो यही हुआ है। जो मिला है वह छुटा है। आप सब ध्यान दें। मैं तो जब ध्यान देता हूं और अपने बचपन से आजतक के मिलन-बिछुड़न के दृश्य को देखता हूं तो बिना समाधि के ही समाधि लग जाती है। जिन-जिनसे मैंने प्रेम किया वे सब पता नहीं कहां चले गये। जिनके साथ में मैं खेला, जिनके साथ-साथ बाग में आम रखाया, आम खाया, किन-किनके साथ कहां-कहां रहा, वे सब पता नहीं कहां चले गये। "दिल में जो दिल बनकर धड़के, गये तो न देखा जरा मुड़के" जो

दिल में दिल बनकर धड़कते थे, वे जब गये तो मुड़कर भी नहीं देखे। और देखेंगे कैसे क्योंकि देखने का कोई चारा भी तो नहीं रहता है। जहां सब कुछ आगमापायी है वही माया है और इस माया के मोह ने हमें विमोहित कर दिया है।

"ताते ज्ञान रतन हरि लीन्हा" इसलिए उसने हमारा "ज्ञान रतन" हर लिया है। हम मोहित हो गये हैं और हमारा ज्ञान-रतन खो गया है। जिस समय हम मोहित होते हैं उस समय हमारी विवेक-शक्ति नष्ट हो जाती है। अकर्तव्य और कर्तव्य का बोध समाप्त हो जाता है। क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए, क्या बोलना चाहिए और क्या नहीं बोलना चाहिए, यह समझ में नहीं आता है। इसीलिए अण्ड-बण्ड बोल देते हैं।

कई लोग तो ऐसे होते हैं जो अण्ड-बण्ड बोलकर कहते हैं कि मेरे मन में ऐसा भाव था ही नहीं, मुख से निकल गया। ऐसा कहना तो और बेईमानी है। मन में बिना रहे निकल कैसे जायेगा। यह कहना चाहिए कि मैंने गलती की। स्थायी भाव तो मेरे मन में नहीं था। हां, भावुकता में आ गया। या हो सकता है कि स्थायी भाव वैसा न हो लेकिन जिस समय कहा उस समय तो मन में था जरूर और भावुकता में वह आ गया। जब हमारी विवेक-शक्ति सो जाती है तब नहीं करने योग्य काम हम करते हैं, नहीं कहने योग्य बात कहते हैं, नहीं सोचने योग्य बातें सोचते हैं। इतना संदेही स्वभाव होता है लोगों का कि तनिक-तनिक बात में पत्नी के लिए, पति के लिए, बच्चे के लिए, माता के लिए, पिता के लिए, पड़ोसी के लिए, ऐसी बातें सोचते हैं कि जो उनके मन में बिलकुल है ही नहीं, लेकिन वह भी सोच लेते हैं।

हमारा ज्ञान रतन खो गया है। इसलिए हम दिग्भ्रमित हैं। ज्ञान-रतन पवित्र वस्तु है। गीता में श्रीकृष्ण महाराज ने कहा था कि ज्ञान से ही जीवन उज्ज्वल होता है। ज्ञान से हम कीचड़ से निकल सकते हैं। ज्ञान से ही हम दुखों से मुक्त हो सकते हैं लेकिन जब माया-मोह में डूबे हैं तब ज्ञान कैसे रहेगा लेकिन साहेब कहते हैं जिसमें तुम डूबे हो वह क्या है। "जीवन ऐसो सपना जैसो जीवन सपन समाना" इस पंक्ति में दो बार वे सपना कहते हैं। यह जोर देने के लिए है। किसी बात पर जोर डालने के लिए एक ही शब्द को दो या तीन बार दोहरा दिया जाता हैं।

साहेब कहते हैं कि जीवन सपने के समान है लेकिन अगर विचार करें तो सपने के समान भी नहीं है। यहां हम इतने लोग बैठे हैं और अगर हम सब सो जायें और सपना देखें तो सबके सपने अलग-अलग होंगे। लेकिन जब जागते हैं तो हम सब लोग यह जानते हैं कि हम प्रीतमनगर के कबीर मंदिर के सत्संग भवन में बैठे सत्संग कर रहे हैं। इसे हम और आप सभी लोग जानते हैं इसलिए यह सपना नहीं है। यह जाग्रत और यथार्थ है। तब इसको सपना क्यों कहा गया है? इसलिए कहा गया है कि यह सब थोड़े समय के लिए है और यहां का सब कुछ क्षणभंगुर है। इसलिए जीवन मानो स्वप्नवत बरतता है। जैसे सपने में कुछ मिला तो हर्ष हुआ और कुछ खो गया तो शोक हुआ लेकिन जब नींद खुली तो न हर्ष रहा न शोक रहा। इसी प्रकार इस दुनिया की चीजें हमें मिलीं, अनुकूल मिलीं तो हर्ष हुआ, प्रतिकूल मिलीं तो शोक हुआ लेकिन फिर कुछ नहीं रहा। यह भी एक सपना है।

एक सपना हम आंखें खोलकर देखते हैं और एक सपना हम आंखें बन्द करके देखते हैं। अभी जो सपना हम देख रहे हैं वह आंखें खोलकर देख रहे हैं। यह जाग्रत का सपना है लेकिन रात में जब सोयेंगे और जब आंखें बन्द हो जायेंगी तब दूसरा सपना देखेंगे। दोनों अलग-अलग ढंग से सपने हैं और सपने की चीज हाथ में लगती नहीं है। यह तत्काल तो पता नहीं लगता है, कुछ दिन के बाद पता लगता है। अगर उसी समय पता लग जाये तो फिर भ्रम में न पड़ें। ज्ञान का अर्थ है कि उसी समय पता लग जाये जिस समय हम मौजूद हैं। जिस समय हमारे सामने मोह और आवरण आता है उसी समय उस वास्तविकता का पता लग जाये तो हम भ्रमित ही न हों।

जो जवानी में ही बुढ़ापा को देख लेगा, वह भटकेगा नहीं। जो संयोग में वियोग को, अनुकूलता में प्रतिकूलता को और हर्ष में शोक को देख लेगा वह भटकेगा नहीं। लेकिन हम यह देखना नहीं चाहते। हम सोचते हैं कि वाह! जवानी में ही हम बुढ़ापा देखें, यह कैसी शिक्षा है यह तो एक मनहूसीयत की बात है।

जो जवान लोग इसमें बैठे हैं उनसे कहो कि तुम बुढ़ापा को देखो तो कहेंगे कि साहेब! यह उपदेश मत करो। अभी तो हमारे रेख आ रही है। हम अपने को बूढ़ा क्यों देखें, लेकिन आप अगर बुढ़ापा को देखेंगे तो बूढ़े नहीं हो जायेंगे। रहेंगे जवान ही बल्कि आपकी जवानी थोड़ी और चल जायेगी। अगर आदमी अपने को थकाये न तो वह और व्यवस्थित रहेगा। जवानी में लोग क्या करते हैं अपने को थकाते हैं। गलत खा-खाकर, गलत पी-पीकर, गलत भोग-भोगकर, गलत क्रियाएं करके अपने को लोग थकाते हैं और बुढ़ापा को बहुत जल्दी बुला लेते हैं। यदि कोई जवानी में ही बुढ़ापा को देखेगा तो उसकी जवानी थोड़े दिन और चलेगी। अगर कोई स्वास्थ्य में अस्वास्थ्य को देखे तो उसका स्वास्थ्य कुछ दिन और चलेगा। अगर संयोग में वियोग को कोई देखे तो सब समय प्रसन्न रहेगा और वियोग होना तो निश्चित है।

उत्तर रामचरितम् में कथा आयी है। अयोध्या में एक चित्रकार आया। उसको आदेश दिया गया कि तुम महाराज श्रीराम के जन्म से लेकर आजतक के उनके जीवन की घटनाओं को राजभवन की दीवारों पर चित्रित करो। चित्रकार चित्र बनाने लगा।

जब चित्र बनाने का काम पूर्ण हुआ तब एक दिन लक्ष्मण ने राम से कहा—"भैया! आप चलकर जरा अपने जीवन से सम्बंधित चित्रों को तो देख लीजिए कि चित्रकार ने कितना सुन्दर चित्र खींचा है।"

महाराज श्रीराम गये और चित्रों को देखने लगे। देखते-देखते जनकपुर के चित्र में पहुंच गये। वहां का चित्र देखकर उनका मन बड़ा आनन्दित हुआ। वहां सीता जी के साथ उनका विवाह हो रहा है। कितनी धूमधाम है। फिर वे आगे बढ़े। दरवाजे पर बारात लौट आयी है। वहां का चित्र देखने लगे तो राम एकदम उदास होकर खड़े हो गये और उनके मुख से यह मंत्र निकला—

जीवत्शतात्पादेषु नूतने दारसंग्रहे।
मातृभिश्चिंत्यमानानां ते ही नो दिवसोगताः॥

तब पिता जी जीवित थे। हम लोगों का नव विवाह हुआ था। नयी दुलहनें घर में आयी थीं। और हमारी माताएं इस चिंता में थीं कि हमारे बच्चे जीवनभर सुख से कैसे रहें। वे दिन हमारे बीत गये हैं। अब पिताजी नहीं रहे। माताएं भी नहीं हैं। हमलोगों की अवस्था भी कितनी ढल गयी है। सारे रंग में भंग हो गया है। तब महाराज श्रीराम के बुढ़ापा का समय रहा होगा। 'उत्तररामचरितम्' में यह बात आयी है जो संस्कृत साहित्य का बहुत अच्छा नाटक है और पंडितों में बहुत मान्य ग्रंथ है।

कहने का मतलब है कि यह तो निश्चित ही है कि जीवन में बुढ़ापा आना है, जीवन का अवसान आना है। जो पहले से ही उसको देख लेता है वह शोकित नहीं होता है। जो अंत में आनेवाली चीजें हैं उसको समझ लेना ही तो वेदान्त और उत्तरायण है।

"उत्तरायण में आदमी मरकर मोक्ष को पा जाता है और जो दक्षिणायन में मरता है उसका मोक्ष नहीं होता है किंतु वह भटकता रहता है" ऐसी बात पंडितों ने शास्त्रों में लिख दिया है। सूरज जब दक्षिण में रहता है तब दक्षिणायन कहा जाता है और जब उत्तर चला जाता है तो उसको उत्तरायण कहा जाता है। उस उत्तरायण में जो शरीर छोड़ता है वह मुक्त हो जाता है, यह पंडितों ने कहा है लेकिन यह विवेकसम्मत बात नहीं है। कबीर साहेब ने इसपर व्यंग्य किया क्योंकि उनकी दृष्टि बड़ी पैनी थी। दूसरी बात कि वे एक महान व्यंग्यकार थे। उन्होंने व्यंग्य में कहा—

लागी आग समुद्र में, कांदो जरि भइ छार।
उत्तर दिशि का पंडिता, रहा विचार विचार॥

ज्ञान की आग लगी और हृदयरूपी समुद्र में जो कीचड़ था—काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि का वह जलकर राख हो गया और जीव की मुक्ति हो गयी। लेकिन पंडित लोग पत्रा में ऐसा विचारते रह गये कि जब सूर्य का उत्तरायण होगा तब शरीर छोड़कर मुक्त होंगे।

महाभारत में भी यह कहानी बना दी गयी कि जब भीष्म पितामह को बाण लगे थे, वे मरणासन्न थे लेकिन तब उत्तरायण नहीं था। इसलिए वे कहे कि भाई, मेरा सिर नीचे हो रहा है। इसलिए मेरा सिर भी ऊंचा कर दो। उत्तरायण होने तक मैं अपना प्राण रोके रहूंगा। कहते हैं कि अर्जुन ने बाण मारकर उनका सिर भी ऊंचा कर दिया और वे उसी बाण शय्या पर पड़े रहे। जब उत्तरायण आया तब उन्होंने अपना शरीर छोड़ा। यह सब लाक्षणिक है और लाक्षणिक में भी लोग मानो घास-फूस में उलझ गये हैं। उत्तरायण का मतलब है ज्ञान की परिपक्वता और दक्षिणायन का मतलब है अधकचरापन की अवस्था। उत्तरायण का मतलब है उत्तरपक्ष यानी परिपक्व ज्ञान और दक्षिणायन का मतलब है पूर्वपक्ष यानी अपरिपक्व ज्ञान।

उत्तरपक्ष और पूर्वपक्ष, किसी बात के ये दो पक्ष होते हैं। जीवन में ही जवानी पूर्वपक्ष है और बुढ़ापा उत्तरपक्ष है। बुढ़ापा में जो परिपक्वता होती है, जो अनुभव होता है, वह जवानी में कहां होता है! उत्तरायण का मतलब है ज्ञान की परिपक्वता लेकिन पंडित लोग समझते हैं कि सूरज का उत्तर हो जाना उत्तरायण है। सूरज=प्रकाश, ज्ञान और ज्ञान का उत्तरपक्ष में हो जाना, ज्ञान का परिपक्व हो जाना उत्तर पक्ष है और माया-मोह का क्षय ही ज्ञान की परिपक्वता है। जानकारी ज्ञान नहीं है। जानकारी का जीवन में प्रयोग ज्ञान है। मोह नहीं करना चाहिए यह सब जानते हैं लेकिन फिर भी मोह करते हैं। क्रोध नहीं करना चाहिए यह सब जानते हैं लेकिन फिर भी क्रोध करते हैं तो यह ज्ञान थोड़े है। यह तो जानकारी है।

"जीवन ऐसो सपना जैसो, जीवन सपन समाना" सपने के समान जीवन बीत रहा है। यदि आप बचपन से आजतक का हवाला अपने नजरों में देख लें तो आपको क्या लगेगा। यदि आप विचारवान होंगे तो आपके मन में वैराग्य होगा और यदि आप विचारवान नहीं होंगे तो दुखी होंगे। विचारवान होना चाहिए और जीवन में आजतक घटित घटनाओं को देखकर जीवन की क्षणभंगुरता को समझ जाना चाहिए। जीवन में अनासक्त होना चाहिए।

"शब्द गुरू उपदेश दीन्हों, तैं छाडु परम निधाना" सद्गुरु कबीर कहते हैं कि तेरे को सद्गुरु ने ज्ञान का निर्णय दिया है। इसलिए ऐ परम निधान चैतन्य! तू छोड़ दे मोह को। परम निधान=आश्रयस्थल, ज्ञान का परम, आश्रयस्थल अपनी आत्मा ही है। ज्ञान और विज्ञान का स्रोत अपनी आत्मा है। समस्त वेद-शास्त्रों, श्रुतियों, स्मृतियों, पुराणों, बाइबिल, कुरान और वनस्पति विज्ञान, जीवविज्ञान, प्राणिविज्ञान, भौतिक विज्ञान, मनोविज्ञान, रसायन विज्ञान, पदार्थ विज्ञान इन सारे विज्ञानों का केन्द्रीभूत स्थल आपका हृदय है। मनुष्य से बढ़कर ज्ञान का निधान कहीं कुछ भी नहीं है। यह व्यावहारिक है और बिलकुल उज्ज्वल है। अनुमान और कल्पना में आप ज्ञान का आधार कहीं सातवें तपक पर, सातवें आसमान पर मान लें वह आपके मन की कल्पना होगी लेकिन जो प्रत्यक्ष और व्यावहारिक है वह यही है कि मनुष्य ही ज्ञान का आधार है, ज्ञान का आश्रय है और ज्ञान का महासागर है।

"तैं छाडु परम निधाना" कबीर साहेब अपनी वाणियों में मनुष्य से बातें करते हैं। न तो वे देवी-देवता से बात करते हैं, न किसी ईश्वर-परमात्मा से और न किसी अन्य से वे बात करते हैं। वे केवल मनुष्य से बात करते हैं। मनुष्य में योगी, अवधूत, संत, भाई, पंडित यह सब वे कहते हैं लेकिन सब मिलाकर मनुष्य से बात करते हैं। उनकी दृष्टि सदैव मनुष्य पर ही केन्द्रित होती है। वे मनुष्य को प्रबुद्ध करना चाहते हैं। वे मानते हैं कि परमात्मा का उद्घाटन मनुष्य में ही होता है और कहीं नहीं होता। आदमी को हटा दो तो परमात्मापन कहां आयेगा। परमात्मापन केवल आदमी में ही आयेगा।

—क्रमशः